वॉलमार्ट भगाओ, खुदरा क्षेत्र बचाओ

सरकार का दावा है कि भारत के खुदरा बाजार में विदेशी पूंजीनिवेश के आने से किसानों को फायदा होगा और ग्राहकों को वस्तुएं कम कीमतों पर मिलेंगी। इतना ही नहीं, इससे अगले तीन सालों में एक करोड़ नये रोजगार पैदा होंगे। वह निर्लज्जता के साथ झूठ बोल रही है।

- विदेशी खुदरा निगम बहुत बड़े हैं। अकेले वॉलमार्ट जितना माल बेचती है, उतना भारत की सभी १.५ करोड़ खुदरा दुकानें मिलकर भी नहीं बेच पाती। इन निगमों से स्पर्द्धा संभव नहीं, वे हमारे छोटे खुदरा व्यापारियों को नष्ट कर देंगे।

- विदेशी खुदरा निगम विशालकाय हैं। वे कृषी उत्पादों को खरीदने की व्यवस्था पर एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं और फिर दाम गिराकर किसानों को उद्ध्वस्त कर देते हैं। ऐसा उन्होंने दुनियाभर में किया है।

- विदेशी खुदरा निगम दैत्याकार हैं। वे संपूर्ण आपूर्ति श्रृंखला – उत्पादन से रिटेल तक – पर एकाधिकार कायम कर, स्वयं ही विशालकाय बिचौलिये बन जाते हैं। फिर वे नफा अपने पास रखेंगे; ग्राहकों के लिये कीमतें कम क्यों करेंगे?

खुदरा क्षेत्र मे विदेशी पूंजीनिवेश को अनुमति देश में लागू वैश्वीकरण की नीतियों का अगला कदम है। वैश्वीकरण से अमीर और अमीर हुए हैं, तो गरीब और गरीब। रिटेल में एफडीआई से न सिर्फ छोटे व्यापारी, बल्कि किसान और छोटी कंपनियां भी, तबाह हो जाएंगे।

लोकायत

सहयोग मूल्य रु. १०



वॉलमार्ट भगाओ
खुदरा क्षेत्र बचाओ

खुदरा क्षेत्र में विदेशी पूंजीनिवेश का विरोध करो!
इससे करोड़ों लोगों का जीवन उद्ध्वस्त हो जाएगा!!



लोकायत

वॉलमार्ट भगाओ, खुदरा क्षेत्र बचाओ

प्रकाशक
अलका जोशी, लोकायत, सिंडिकेट बैंक के सामने,
लॉ कॉलेज रोड, नल स्टॉप के पास, पुणे - 411004

मुद्रक
आर. एस. प्रिंटर्स, 455, शनिवार पेठ, पुणे

प्रथम संस्करण: जुलाई 2013

अनुक्रमणिका

प्रस्तावित सहयोग मूल्य: रु. 10/-

प्रस्तावना

14 सितंबर, 2012 के दिन विदेशी कम्पनियों व विदेशी सरकारों, विशेषकर अमरीका, के तीव्र दबाव के सामने झुककर भारत सरकार के केंद्रीय मंत्रीमंडल ने बहु-ब्राण्ड खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment या एफडीआइ) को अनुमति दे दी। इस निर्णय के तहत विदेशी खुदरा निगम अब भारतीय अर्थव्यवस्था के इस अत्यंत अहम क्षेत्र में 51 प्रतिशत हिस्सेदारी की अधिकतम सीमा तक निवेश कर सकते हैं, यानि वे अपना स्वामित्व कायम कर सकते हैं। (बहु-ब्राण्ड खुदरा स्टोर एक ऐसी दुकान है, जिसमें एक ही वस्तु के विभिन्न प्रतियोगी ब्रांड एक साथ बिक्री के लिये उपलब्ध होते हैं। 'मोर' और 'बिग बाजार' बहु-ब्राण्ड खुदरा मॉल के उदाहरण हैं।)

विदेशी हाथ

केंद्रीय मंत्रीमंडल ने इसके पहले बहु-ब्राण्ड खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को 24 नवम्बर 2011 को स्वीकृति दी थी। [साथ ही, एकल ब्राण्ड (सिंगल ब्राण्ड) खुदरा क्षेत्र में विदेशी पूंजीनिवेश की सीमा बढ़ाकर 100% कर दी गई।]

खुदरा क्षेत्र में एफडीआई को अनुमति देने के केंद्र सरकार के फैसले का समूचे देश में भारी विरोध हुआ। खासकर व्यापारी संगठनों ने कड़ा ऐतराज जताया। देश के 10,000 से भी ज्यादा व्यापारी संगठनों से जुड़े करोड़ों व्यापारियों ने 1 दिसंबर, 2011 को देशव्यापी 'बंद' रखा और सरकार के निर्णय के विरोध में रैलियां निकालीं। अपने राजनीतिक स्वार्थ साधने का मौका देखकर, संपूर्ण विपक्ष ने इन विरोधों का जोरदार समर्थन किया। व्यापक आक्रोश के चलते तृणमूल कांग्रेस तथा द्रमुक जैसे कांग्रेस के कुछ अहम सहयोगियों ने भी कैबिनेट के फैसले को वापस लेने की मांग की। अंततः सरकार ने 7 दिसम्बर, 2011 को बहु-ब्राण्ड खुदरा क्षेत्र में एफडीआई को इजाजत देने के अपने फैसले को स्थगित कर दिया।

भीमकाय विदेशी कंपनियों ने तुरंत ही सरकार के इस निर्णय पर गहरी नाराजगी व्यक्त की। उन्होंने अपने देशों के सांसदों की 'लॉबींग' (घूस देने के लिये सभ्य शब्द) पर करोड़ों डालर खर्च किये थे ताकि वे भारत में इनके मॉल्स खोलने में मदद करें। अमरीका में इस तरह की लॉबींग करना कानूनी है, पर कम्पनियों को हर तीन महीने में इसके बारे में एक घोषणा रिपोर्ट अमरीकी सिनेट को देनी होती है। वॉलमार्ट, एक अमरीकी निगम जो कि विश्व की सबसे बड़ी खुदरा कम्पनी है, द्वारा पेश की गई रिपोर्ट के मुताबिक उसने भारत व अन्य देशों के बाजारों में प्रवेश पाने में मदद के लिये अमरीकी सांसदों की लॉबींग पर 2008 से 25 मिलियन डॉलर (125 करोड़ रुपये) खर्च किये थे। कहने की जरूरत नहीं, इसका एक हिस्सा भारतीय

राजनीतिज्ञों व पार्टियों की जेबों में भी पहुँचा होगा।[1]

ब्रिटेन की विशालकाय खुदरा कम्पनी 'टेस्को' ने टिप्पणी की: "एफडीआई के निर्णय को टालने से भारतीय उत्पादकों, किसानों व ग्राहकों ने एक सुनहरा मौका गंवा दिया है।"[2] जर्मनी की विशाल खुदरा निगम 'मेट्रो' के वरिष्ठ अधिकारियों ने भी इस निर्णय पर अफसोस जताया।[3] यहाँ तक कि माइक्रोसॉफ्ट, जो कि खुद इस निर्णय से सीधे प्रभावित नहीं होती, ने भी कहा कि वह एफडीआई की स्थगिति के निर्णय से "बहुत निराश" है।[4]

विदेशी निगमों और उनकी दलाल सरकारों ने इस आर्थिक सुधार को तेजी से आगे बढ़ाने के लिये भारत सरकार पर दबाव डाला। दुनिया की तीनों बड़ी अंतरराष्ट्रीय क्रेडिट रेटिंग संस्थाओं ने भारत सरकार की नीतियां बनाने की व प्रशासकीय क्षमताओं पर सवाल खड़े करने शुरू कर दिये। अप्रैल 2012 में 'स्टेंडर्ड एण्ड पूअर्स' ने भारत की रेटिंग 'स्थिर' से घटाकर 'नकारात्मक' कर दी। फिर, दो महीने बाद, उसने धमकी दी कि यदि घोषित आर्थिक सुधार लागू नहीं हुए तो वह भारत की वित्तीय साख की रेटिंग और नीचे गिराकर 'जंक ग्रेड' (निवेश नहीं करने योग्य) कर देगी।[5] कुछ ही समय बाद, 'फिच' ने अपर्याप्त आर्थिक सुधारों का कारण बताते हुए भारत की रेटिंग घटा दी; और अगस्त में, 'मूडीज़' ने भी भारत के आर्थिक विकास दर के बारे में अपना पूर्वानुमान घटा दिया। 'मॉर्गन स्टैनली' व 'गोल्डमॅन सैक्स' जैसे बड़े निवेश बैंकों ने भी भारत के आर्थिक विकास की सम्भावनाओं के बारे में प्रश्नचिन्ह खड़े किये और कहा कि आर्थिक सुधारों को लागू करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति बहुत कमजोर है।[6]

जुलाई 2012 में अमरीकी पत्रिका *टाइम* ने अपने एशियाई संस्करण में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के असहाय चेहरे को मुखपृष्ठ पर छापा और आर्थिक सुधारों के लिये हिम्मत न जुटा पाने के लिये उनकी आलोचना की।[7] कुछ ही दिनों बाद, प्रमुख अमरीकी दैनिक *वॉशिंगटन पोस्ट* ने मनमोहन सिंह के बारे में लिखा कि "उन्होंने ही भारत को आधुनिकता व समृध्दि के रास्ते पर आगे बढ़ाया था लेकिन अब खतरा है कि वे इतिहास के पन्नों में असफल कहलाये जाएंगे।"[8]

फरवरी 2012 में अमरीकी सरकार के अंतरराष्ट्रीय व्यापार के सचिव फ्रांसिस्को सांचेज़ ने भारत को बहु-ब्राण्ड रिटेल को विदेशी पूंजीनिवेश के लिये खोलने के लिये कहा और तर्क दिया कि इससे "अर्थव्यवस्था में वृद्धि को मदद मिलेगी।" ब्रिटेन के व्यापार मंत्री विन्स केबल ने जनवरी 2012 में अपनी भारत यात्रा के दौरान इस मुद्दे को उठाया; और जुलाई 2012 में ब्रिटेन के वित्तमंत्री जॉर्ज ओसबोर्न ने भारत सरकार से "रिटेल क्षेत्र के उदारीकरण के बारे में और अधिक महत्त्वाकांक्षी" होने को कहा।[9]

जुलाई 2012 में अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा भी वृंदगान में शामिल हो गये। "भारत के बिगड़ते निवेश परिदृश्य" के बारे में अमरीकी व्यापारिक समुदाय की चिंता का जिक्र करते हुए, उन्होंने भारत सरकार का आह्वान किया कि वह आर्थिक सुधारों की एक और "लहर" लाए और विदेशी निवेश पर सीमाओं और प्रतिबंधों को हटाए।[10]

देश का विदेशी मुद्रा संकट और विदेशी कर्जे का संकट गहराता जा रहा था (इसके बारे में आगे चर्चा की गयी है)। परिणामतः भारत सरकार ने विदेशी निगमों व सरकारों के सामने घुटने टेक दिये, और देश के व्यापारियों के तीव्र विरोध को नजरअंदाज करते हुए बहु-ब्राण्ड खुदरा क्षेत्र को विदेशी पूंजीनिवेश के लिये खोल दिया। 20 सितम्बर 2012 को, जिस दिन व्यापारी संगठनों और विपक्षी पार्टियों ने इस निर्णय के विरोध में 'भारत बंद' का आह्वान किया था, उसी दिन भारत सरकार ने वॉलमार्ट जैसे विशालकाय खुदरा निगमों के लिये देश के दरवाजे खोल देने की अधिसूचना जारी कर दी।

प्रचार

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से लेकर प्रतीक्षारत-प्रधानमंत्री राहुल गांधी तक, और मुकेश अंबानी से लेकर रतन टाटा तक, सभी इस बात का दावा कर रहे हैं कि भारतीय खुदरा बाजार में विदेशी कम्पनियों के आने से देश को गहराते आर्थिक संकट से उबरने में मदद मिलेगी और विकास दर में वृद्धि होगी। उनका दावा है कि एफडीआई मंहगाई रोकेगी और आम आदमी को "रोजमर्रा की चीजें कम दामों पर मिलेंगी।" इतना ही नहीं, इससे किसानों को फायदा होगा क्योंकि यह "देश में आधुनिक तकनीक लाएगी, ग्रामीण आधारभूत ढांचे में सुधार होगा, कृषि उत्पादन की बर्बादी कम होगी और किसानों को उनकी पैदावार की अच्छी कीमत मिलेगी।"[11] वाणिज्य मंत्री आनंद शर्मा ने तो एक कदम और आगे बढ़ कर दावा किया है कि एफडीआई से अगले तीन सालों में एक करोड़ नये रोजगार पैदा होंगे![12]

वाह! कितनी निर्लज्जता के साथ झूठ बोल रहे हैं। यह दावा कि 'खुदरा क्षेत्र में विदेशी निगमों की दखल से भारतीय अर्थव्यवस्था को बेशुमार फायदा होगा' वही पुराना तर्क है, जिसे भारतीय सत्ताधारी वर्ग ने आज से दो दशक पहले दिया था, जब उसने पहली बार बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारत में निवेश करने के लिये आमंत्रित किया था। आम भाषा में इसे (भारतीय अर्थव्यवस्था का) **वैश्वीकरण** के नाम से जाना जाता है। वैश्वीकरण से वाकई भारतीय अमीरों को बहुत फायदा हुआ है। देश में व्यक्तिगत पूंजीदारों [जिनके पास निवेश के लिए 10 लाख डालर (4.6 करोड़ रुपये) की पूंजी है] की तादाद में जबरदस्त इजाफा हुआ है: 2009 में

उनकी संख्या पिछले साल की तुलना में 51 फीसदी से बढ़कर 1.27 लाख हो गई।[13] दूसरी ओर, देश की 77 फीसदी आबादी रोजाना 20 रुपये से कम पर गुजारा करने के लिए मजबूर है; 87 फीसदी ग्रामीण आबादी को रोजाना के लिए निर्धारित न्यूनतम 2400 कैलोरी पौष्टिक ऊर्जा भी नहीं मिल पाती है![14] इन नीतियों के परिणामस्वरूप पिछले दशक में दो लाख से ज्यादा किसानों ने खुदकुशी की है! इसके बावजुद सरकार में बैठे ये लोग अब किसानों की बुरी हालत को सुधारने की बात कर रहे हैं! और अंत में, एफडीआई से रोजगार पैदा होने की इनकी बातें हास्यास्पद हैं; ठीक इसी प्रकार की आर्थिक नीतियों ने देश को पिछले एक दशक से ऐसा विकास दिया है जिसमें रोजगार के अवसरों की संख्या बढ़ी ही नहीं है।[15]

लेकिन इस व्यापक आलोचना को परे रख कर थोड़ी गहराई में जाकर विश्लेषण किया जाए कि विदेशी रिटेल कम्पनियों का भारत में प्रवेश का खुदरा क्षेत्र पर क्या असर होगा; फिर उस पृष्ठभूमि में उपभोक्ताओं और किसानों को मिलनेवाले तथाकथित लाभों पर एक नजर डालेंगे।

1. भारतीय खुदरा क्षेत्र: तथ्य और आंकड़े

अनुमान है कि भारतीय खुदरा क्षेत्र लगभग 400-450 अरब[16] डॉलर का है।[17] देश में कृषि के बाद इस क्षेत्र में लोगों को सबसे ज्यादा काम मिलता है। वर्तमान समय में चार करोड़ लोग खुदरा कारोबार में कार्यरत हैं, कुल उपलब्ध रोजगार का करीब 10 फीसदी।[18]

रोजगार निर्मिति के नजरिये से खुदरा क्षेत्र आज संभवतः देश का सबसे अहम क्षेत्र है, क्योंकि गत दो दशकों से देश में हो रहे आर्थिक सुधारों के चलते खेती और विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार वृद्धि लगभग रुक गयी है।[19] कहीं भी रोजगार न मिलने की स्थिति में यह क्षेत्र एक आखिरी सहारा बना गया है; एक प्रकार से यह क्षेत्र सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम के अभाव में उसके विकल्प का काम करता है। अतः जब किसी फैक्टरी में ताला लगने पर उसके कामगार बेकार हो जाते हैं, या किसानों को उनकी जमीन से बेदखल कर दिया जाता है, या जब एक युवा स्नातक को ठहरावग्रस्त विनिर्माणक्षेत्र में नौकरी नहीं मिलती है, तब यह खुदरा क्षेत्र ही उन सबको काम दे पाता है। एक कुशल श्रमिक रेहड़ी लगा लेता है, किसान पान-बीड़ी की दुकान खोल लेता है, पढ़ा-लिखा बेरोजगार युवक अखबार बेच लेता है या घर-घर जा कर सामान बेचने की नौकरी ले लेता है, और थोड़ी बेहतर आर्थिक स्थिति वाला बेरोजगार स्टेशनरी की दुकान खोल लेता है और साथ में खुदरा टेलीकॉम कार्ड बेचना शुरू कर देता है।

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा 2005 में करायी गई देशव्यापी *आर्थिक*

जनगणना के मुताबिक पूरे देश में 1.49 करोड़ खुदरा दुकानें थीं,[20] जो दुनिया में सबसे ज्यादा है। भारत के खुदरा क्षेत्र पर छोटे खुदरा व्यापारियों का प्रभुत्व है; इनमें छोटी किराना की दुकानें, जनरल स्टोर्स, दवाविक्रेता, फर्नीचर–हार्डवेयर-फुटवेयर-गारमेंट-कट्लरी-स्टेशनरी-बेकरी की दुकानें, फल और सब्जी की दुकानें, ठेलेवाले, पटरी के दुकानदार, आदि आते हैं। ये सब मिलकर तथाकथित 'असंगठित खुदरा' या परम्परागत खुदरा क्षेत्र कहलाते हैं। कुल खुदरा बिक्री का 93 फीसदी इस क्षेत्र में होता है। संगठित खुदरा क्षेत्र शेष सात फीसदी के लिए जिम्मेदार है। इसमें शामिल हैं कंपनियों द्वारा खोले गये बड़े-बड़े मॉल्स और खुदरा व्यापार की दुकानों की श्रृंखलाएं, व निजी मिल्कियत वाली बड़ी खुदरा दुकानें।

संगठित रिटेल: तेज विकास

विगत कुछ सालों से संगठित खुदरा क्षेत्र में भारी वृद्धि हो रही है। अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों पर भारतीय अनुसंधान परिषद के मई 2008 में सरकार द्वारा प्रायोजित एक अध्ययन में यह अपेक्षा व्यक्त की गई थी कि 2006-07 से 2011-12 के दरम्यान असंगठित खुदरा क्षेत्र में सालाना 10 फीसदी बढ़ोतरी से, तो संगठित खुदरा व्यापार में उससे बहुत ज्यादा तेजी से, सालाना 45-50 फीसदी की दर से, विकास होगा।[21] एटी किअर्नी (विश्व की प्रख्यात परामर्शदात्री संस्था) ने अपने वैश्विक खुदरा विकास सूचकांक[22] के 2011 संस्करण में उम्मीद जताई है कि भारत का संगठित खुदरा बाजार कुल खुदरा बाजार का मौजूदा 7 फीसदी से बढ़कर 2020 तक 20 फीसदी तक हो जाएगा।[23]

1999 में भारत में मात्र तीन शॉपिंग मॉल्स थे, जिनका फैलाव मात्र 10 लाख वर्गफुट में था। उसके बाद देश में मॉल्स की संख्या और इनमें लगने वाली जमीन की तेजी से बढ़ोतरी हुई है। 2006 के अंत तक देश में 137 मॉल्स थे और इनमें लगने वाली जमीन का रकबा 280 लाख वर्गफुट हो गया था, अर्थात हर साल औसतन 39 लाख वर्गफुट की दर से बढ़ा था। 2006 के पश्चात, मॉल्स के क्षेत्रफल में सालाना औसत बढ़ोतरी दुगनी हो कर 80 लाख वर्गफुट हो गई थी। 2009 तक, देश में शॉपिंग मॉल्स की तादाद 172 पहुंच गई थी और कुल 5 करोड़ 20 लाख वर्गफुट जगह उनके पास थी; और अनुमान था कि 2012 तक, यानि मात्र तीन सालों में, मॉल्स का रकबा इसका दो गुना हो जायेगा।[24] भारत के कई बड़े कॉरपोरेट घराने खुदरा दुकानों की श्रृंखला खोलने के लिए संगठित खुदरा क्षेत्र में प्रवेश कर गए हैं। इनमें रिलायंस (रिलायंस फ्रेश, रिलायंस मार्ट), आदित्य बिड़ला ग्रुप (मोर), टाटा ग्रुप (वेस्टसाइड, स्टार इंडिया बाजार, लैंडमार्क), के. रहेजा ग्रुप (शॉपर्स स्टॉप, क्रॉसवर्ड और इनऑरबिट मॉल) और आर.पी. गोयनका ग्रुप (स्पेंसर्स) शामिल हैं।

संगठित रिटेल क्षेत्र के प्रचंड विकास ने छोटे खुदरा व्यवसायियों पर बहुत बुरा असर डाला है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक बेंगलुरू, अहमदाबाद और चंडीगढ़ में फल और सब्जियों की 33-60 प्रतिशत परम्परागत खुदरा दुकानों की बिक्री में 10 से 30 प्रतिशत की गिरावट आई है और आय में 20 से 30 फीसदी की कमी हुई है।[25]

वॉलमार्ट और टेस्को जैसी विदेशी रिटेल कंपनियां बिग बाजार और मोर जैसे भारतीय मॉल्स की तुलना में बहुत ज्यादा बड़ी हैं। उनके भारतीय खुदरा बाजार में प्रवेश से देश के असंगठित खुदरा क्षेत्र का तो विनाश ही हो जाएगा। इन बहुराष्ट्रीय निगमों के आकार और अर्थशास्त्र पर एक नजर डालें।

2. बहुराष्ट्रीय निगम कितने बड़े हैं?

आज विश्व की अर्थव्यवस्था पर मुट्ठीभर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व है। बहुराष्ट्रीय निगम एक अत्यंत विशाल कंपनी है जिसका प्रबंधन मुख्यालय तो किसी एक देश में होता है, लेकिन वह अनेक देशों में कारोबार करती है। बहुराष्ट्रीय निगमों के मुख्यालय प्रधानतया विकसित पूंजीवादी देशों, यानि अमरीका, युरोपीय संघ और जापान, में हैं, हालांकि हाल के वर्षों में तीसरी दुनिया के कुछ देशों में भी बहुराष्ट्रीय निगमों का विकास हुआ है।

कॉलेजों में विद्यार्थियों को आज भी उन्नीसवीं सदी का अर्थशास्त्र ही सिखाया जाता है; उन्हें सिखाया जाता है कि विश्व अर्थव्यवस्था में कोई बदलाव नहीं हुआ है, कि आज भी हमारा युग प्रतिस्पर्द्धा का युग है जिसमें कंपनियों के बीच तीव्र स्पर्द्धा हो रही है। लेकिन सच्चाई ठीक इसके विपरीत है। प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र पर, फिर चाहे वह मोटरगाड़ियों का निर्माण हो या सेमीकन्डक्टर्स या दवाओं का, अथवा खुदरा या परिवहन या इन्फॉरमेशन टेक्नोलॉजी का क्षेत्र हो, या फिर बैंकिंग हो या वित्त हो या खेती से जुड़ा कोई काम हो—बीजों के उत्पादन से लेकर कीटनाशक बनाने से लेकर अनाज के उत्पादन तक—हर क्षेत्र पर, विश्व स्तर पर, कुछ गिनती के बड़े निगमों का प्रभुत्व स्थापित है। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि हम किसी एक देश में किसी एक आर्थिक क्षेत्र पर कुछ-एक कंपनियों के प्रभुत्व की बात नहीं कर रहे हैं; ये मुट्ठीभर निगम विश्व स्तर पर उस आर्थिक क्षेत्र पर अपना दबदबा बनाए हुए हैं। एक बहुराष्ट्रीय निगम 20 या 50 या इससे भी ज्यादा देशों में कारोबार करता है, और अपनी तरह के गिनती के निगमों के साथ मिलकर उस विशिष्ट क्षेत्र के वैश्विक उत्पादन पर नियंत्रण स्थापित किए हुए है।

उदाहरणतः, आज पांच बहुराष्ट्रीय कम्पनियां मिलकर पूरी दुनिया के लगभग आधे मोटर वाहनों का उत्पादन करती हैं, और दस सबसे बड़ी कम्पनियां मिलकर दुनिया के 70 फीसदी से ज्यादा मोटर वाहनों का उत्पादन करती हैं। बाकी मोटर

वाहन कम्पनियों की विश्व बाजार में हिस्सेदारी बहुत तेजी से सिकुड़ रही है।[26] इसका मतलब स्पष्ट है कि ये छोटी कम्पनियां दुनिया के मोटर वाहन बाजार पर पांच बड़ी कम्पनियों के प्रभुत्व को कभी चुनौती नहीं दे सकतीं; यानि आने वाले वर्षों में ये छोटी कम्पनियां या तो आपस में विलीन हो जाएंगी या फिर बड़ी कम्पनियां इन्हें अधिगृहित कर लेंगीं। इसका एक अर्थ यह भी है कि इस बात की कोई संभावना नहीं है कि नीलगगन से कोई नई कम्पनी उभरेगी जो कि विश्व के मोटर वाहन उत्पादन क्षेत्र पर मुट्ठीभर कम्पनियों के दबदबे को ललकारेगी।

वॉल स्ट्रीट जर्नल में, वर्ष 1999 में, "आओ अल्पाधिकार खेलें" (Let's Play Oligopoly) इस बेहद सटीक शीर्षक के साथ प्रकाशित आलेख में स्थिति का इस तरह से वर्णन किया गया था:[27]

> उद्योग दर उद्योग में एकीकरण की तरफ बढ़ना अटल प्रतीत होता है ... दुनिया का मोटरवाहन उद्योग छह या आठ कम्पनियों के हाथों में जा रहा है। संभवतः दो अमरीकी कार निर्माता, दो जापानी तथा कुछ युरोपीयन कम्पनियों का ही अस्तित्व बचेगा।
>
> दुनिया में सेमीकंडक्टर बनाने वाली सबसे बड़ी कम्पनियां मुश्किल से एक दर्जन हैं। चार कम्पनियां मूलतः पूरे विश्व में संगीत के रिकार्डों की आपूर्ति करती हैं। दस कम्पनियों का दुनिया के औषधि निर्माण कारोबार पर प्रभुत्व है, और अपेक्षा है कि आने वाले वर्षों में इनकी संख्या विलीनीकरण द्वारा और भी कम हो जाएगी क्योंकि इन दैत्यों को भय है कि विश्व स्तर पर स्पर्द्धा करने में वे छोटे पड़ते हैं।
>
> दुनिया के शीतपेय व्यापार में मात्र तीन कम्पनियों की दखल है, और इनमें से सबसे छोटी कम्पनी कैडबरी श्वेप्पस (Schweppes) ने जनवरी में अपने अंतरराष्ट्रीय व्यापार का एक हिस्सा कोका-कोला कम्पनी को बेच दिया है। इसी तरह, दुनियाभर का व्यावसायिक हवाई जहाज बनाने का कारोबार मात्र दो कम्पनियां सम्भालती हैं—बोइंग कम्पनी और एयरबस इंडस्ट्रीज।

यह आलेख आज से डेढ़ दशक पहले लिखा गया था। तब से निगमों के केंद्रीयकरण की प्रक्रिया और तेज ही हुई है। 2005 में अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन 'ईटीसी समूह' ने एक रिपोर्ट में विभिन्न क्षेत्रों में 10 सबसे बड़ी कंपनियों की बाजार में हिस्सेदारी की समीक्षा की, और उसे आश्चर्यकारी निष्कर्ष मिले:[28]

- ✓ विश्व के 2100 करोड़ डॉलर के व्यावसायिक बीज बाजार में 10 सबसे बड़ी कम्पनियों का लगभग आधे बाजार पर कब्जा है;
- ✓ कीटनाशकों के क्षेत्र में 10 दिग्गज कम्पनियां 2957 करोड़ डॉलर के विश्व बाजार में से 84 फीसदी पर नियंत्रण करती हैं;

- ✓ विश्व का पशुओं का दवा उद्योग 2026 करोड़ डॉलर का है, जिसमें 55 फीसदी हिस्सा 10 बड़ी कम्पनियों के पास है; और
- ✓ जैव तकनीक के तीन-चौथाई विश्व कारोबार पर 10 कम्पनियों का कब्जा है।

ये आंकड़े भी विशालकाय निगमों के एकाधिकार के सारे पहलुओं का वर्णन नहीं करते, क्योंकि ये इन कम्पनियों द्वारा पूरी दुनिया के बाजारों पर अपना शिकंजा कसने के लिए किये गये विभिन्न कार्यनीतिक गठबंधनों और साझेदारियों को उजागर नहीं करते। इनमें उप-ठेके, प्रबंधन संबंधी करार, संपूर्ण परियोजना के निर्माण/चलाने के ठेके और उत्पादन में साझेदारी शामिल हैं। उदाहरणार्थ, मजदूरी खर्च कम करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने उत्पादन का एक हिस्सा या कभी-कभी पूरा उत्पादन तीसरी दुनिया के देशों की कंपनियों को उपठेकेदारी पर सौंप देती हैं। इसकी मात्रा इतनी ज्यादा है कि एक अनुमान के मुताबिक दुनिया का 40 फीसदी व्यापार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा दूसरे देशों की कंपनियों को अपना काम उप-ठेके पर देने से संबंधित है; जैसे, नाईके (दुनिया की विख्यात जूता बनाने वाली कम्पनी) एक भी जोड़ी जूते खुद नहीं बनाती—उसका सारा उत्पादन दक्षिण कोरिया, चीन, इंडोनेशिया, थाईलैंड और वियतनाम जैसे देशों के उसके उपठेकेदार करते हैं। एक दूसरे किस्म का चौंका देने वाला उदाहरण माइक्रोसॉफ्ट का है। हालांकि यह विश्व की सबसे ताकतवर कम्पनियों में से एक है, फिर भी इसने एरिक्सन, ब्रिटिश टेलिकम्युनिकेशन्स और टेलमेक्स जैसी कम्पनियों के साथ गठबंधन किये हुए हैं।

विश्व की प्रमुख विमानन कम्पनियां तो एक कदम और आगे बढ़ गई हैं। उन्होंने आपस में मिलकर मुट्ठीभर महा-साझेदारियां बना ली हैं। इनमें से एक है स्टार अलायंस, जिसमें अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, ऑस्ट्रिया, स्विट्जरलैंड, स्पेन, पुर्तगाल, पोलैंड, क्रोएशिया, ग्रीस, कोरिया, स्लोवीनिया, फिनलैंड, तुर्की, मिस्त्र, थाईलैंड, सिंगापुर, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, जापान और चीन की विमानन कम्पनियां शामिल हैं। ये विमानन कम्पनियां अपने खर्चों को कम करने के लिए अपने विमान, खानपान सेवाओं, प्रशिक्षण, रख-रखाव और यहां तक कि विमानों की खरीद के कार्यक्रमों में आपस में सहयोग कर रही हैं। इसका व्यावहारिक परिणाम यह हुआ है कि एक बड़ी विमानन कम्पनी, इस उदाहरण में अमरीका की युनाईटेड एयरलाइंस, के नेतृत्व में एक वैश्विक बेड़ा कार्यरत है।[29]

विलय, अधिग्रहण, साझेदारी और इस प्रकार के अनेक तरीकों से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ताकत तेजी से बढ़ती जा रही है। इन दैत्याकार कम्पनियों का विश्व अर्थव्यवस्था पर प्रभुत्व का अंदाजा, *फार्च्यून* पत्रिका द्वारा संकलित दुनिया के 500 सबसे बड़े निगमों की आमदनी से लगाया जा सकता है: इनकी एकत्रित सालाना

आमदनी दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का करीब 35-40 फीसदी है![30]

हाल में हुए एक अध्ययन से विश्व की सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विश्व अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण और भी स्पष्ट हो जाता है। ज्यूरिख के स्विस संघीय तकनीकी संस्थान[31] ने 43,000 प्रमुख बहुराष्ट्रीय निगमों के आपसी सम्बन्धों का अध्ययन करने पर पाया कि उनके बीच एक-दूसरे में निवेश का एक व्यापक जाल बना हुआ है, जिस पर केंद्र में 1318 भीमकाय निगमों का नियंत्रण है। ये 1318 निगम दुनिया के कुल परिचालन राजस्व[32] के 20 प्रतिशत हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेकिन अपने शेयरों के द्वारा इन्होनें सामूहिक रूप से दुनिया की अधिकांश महत्त्वपूर्ण और विनिर्माण फर्मों पर स्वामित्व स्थापित किया हुआ है, और इस प्रकार इनका दुनिया की आमदनी के और 60 फीसदी हिस्से पर नियंत्रण है!![33]

इसमें कोई संदेह नहीं कि मात्र मुट्ठीभर विशालकाय निगमों ने विश्व अर्थव्यवस्था को अपने कठोर शिकंजे में जकड़ लिया है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां और स्पर्द्धा

महज थोड़ीसी भीमकाय कम्पनियों का हरेक क्षेत्र के वैश्विक उत्पादन पर एकाधिकार के कारण, विश्व अर्थव्यवस्था में एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि ये कम्पनियां अब दामों को लेकर आपस में स्पर्द्धा नही करती हैं।

पारम्परिक अर्थशास्त्र का सिद्धांत यह मानकर चलता है कि बाजार में बड़ी संख्या में छोटी कंपनियां आपस में गला-काटू प्रतियोगिता कर रही हैं; इनमें से किसी के पास कीमत, उत्पादन और निवेश को प्रभावित करने की ताकत नहीं है, ये सभी बाजार द्वारा तय होते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमों के उदय ने इस परिस्थिति को बदल दिया है। एक विशालकाय निगम इतना अधिक उत्पादन करता है कि वह एक क्षेत्र का अहम हिस्सा होता है। इसके चलते वह उत्पादन की मात्रा, उसके दाम और अपने निवेश के परिमाण को नियंत्रित कर सकता है। इसलिए, पाठ्य पुस्तकों में भले ही आज भी स्पर्द्धा के बारे में अर्थशास्त्र का वही पुराना शास्त्रीय सिद्धांत पढ़ाया जाता हो, लेकिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अर्थशास्त्र को समझने के लिए यह सिद्धांत अब कारगर नहीं है।[34]

चूंकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विशालकाय और बेशुमार वित्तीय ताकत वाली होती हैं, ऐसे में यदि वे आपस में कीमत-युद्ध करती हैं, तो यह सभी के लिये इतना विनाशकारी होगा कि जीतने वाला भी बहुत कमजोर हो चुका होगा। अतः वे आपस में कीमत-युद्ध करने के बजाए कीमतों पर सांठगांठ करती हैं। और अगर सांठगांठ से ही दाम तय करने हैं, तो कीमतें कम क्यों रखी जाएं? लिहाजा, वे वस्तुओं की

कीमतें उस स्तर तक ऊंची रखती हैं, जो उन्हें अधिकतम मुनाफा दे।[35] (इसका मतलब यह भी है कि अगर जरूरत पड़ी, तो वे कीमतें घटा भी सकती हैं—जैसा कि हम आगे देखेंगे, वे कभी-कभार छोटे उत्पादकों को बर्बाद करने के लिए ऐसा करती हैं, और बाद में फिर से दाम बढ़ा देती हैं।)

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीच स्पर्द्धा समाप्त हो गई है। गला-काटू स्पर्द्धा सदा की तरह ही जारी रहती है। फर्क सिर्फ इतना है कि अब उसका रूप बदल गया है। वे अब आपस में उत्पादन मूल्य को घटाने के लिए, संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए, वस्तुओं में थोड़ा दिखावटी फर्क लाकर और विज्ञापनों के ज़रिये बाजार में अपने हिस्से को बढ़ाने के लिये स्पर्द्धा करती हैं।

3. रिटेल में एफडीआई का छोटे व्यापारियों पर प्रभाव

अन्य सभी क्षेत्रों की तरह ही, रिटेल क्षेत्र में भी तेजी से केंद्रीयकरण हो रहा है। दुनिया के खुदरा बाजार पर वॉलमार्ट, टेस्को, कैरेफोर और मेट्रो जैसी कुछ ताकतवर निगमों का नियंत्रण है, जिनके मुख्यालय अमरीका या पश्चिमी युरोप में हैं। ये रिटेल निगम इतने विशाल हैं कि हमारी कल्पना में भी नहीं समा सकते। साल 2009-10 में खुदरा क्षेत्र की दुनिया की सबसे बड़े कंपनी वॉलमार्ट ने विश्व स्तर पर 405 अरब डॉलर की बिक्री की थी। अन्य भीमकाय घरानों में फ्रांस की कैरेफोर ने 163.8 अरब डॉलर की, जर्मनी के मेट्रो ने 91.4 अरब डालर की और ब्रिटेन के टेस्को ने 90.1 अरब डॉलर की वार्षिक बिक्री की थी।[36] इन आंकड़ों का मतलब यह हुआ कि अकेले वॉलमार्ट जितना माल बेच लेती है, उतना भारत की सभी 1.5 करोड़ खुदरा दुकानें मिलकर भी नहीं बेच पाती हैं। स्पष्ट है, एक बार जब ये भीमकाय निगम भारत के खुदरा क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेंगे, यहां के छोटे-छोटे खुदरा व्यापारी उनका बिलकुल भी मुकाबला नहीं कर पाएंगे और बर्बाद हो जाएंगे; उधर, भारतीय कॉरपोरेट खुदरा व्यापारी इन विदेशी रिटेल निगमों के साथ समझौता कर, उनके छोटे साझेदार बन जायेंगे। कुछ ही सालों में भारत का गतिशील खुदरा क्षेत्र मुट्ठीभर विशालकाय खुदरा निगमों के अधीन हो जाएगा।

इन भीमकाय निगमों का काम करने का तरीका बड़ा सरल है। अपने आकार और वित्तीय ताकत के बलबूते पर वॉलमार्ट जैसे भारी-भरकम खुदरा व्यवसायी दुनिया के स्तर पर सबसे कम लागत वाले उत्पादकों (मसलन चीन) से माल खरीद पाने में सक्षम हैं। उदाहरणार्थ, वॉलमार्ट चीन से हर साल अरबों डॉलर्स का माल खरीदती है। *वाशिंगटन पोस्ट* की एक रिपोर्ट के अनुसार वॉलमार्ट की दुनियाभर की 6000 आपूर्तिकर्ता कम्पनियों की सूचि में से 80 फीसदी से ज्यादा चीन की हैं।[37]

जहां तक कृषि पैदावार की बात है, खुदरा निगम सीधे भारतीय किसानों से उनके उत्पाद खरीद सकेंगे। (केंद्र सरकार राज्य सरकारों पर दबाव डाल रही है कि वे अपने एपीएमसी[38] अधिनियम में संशोधन करके इसकी अनुमति दें; अधिकांश राज्य सरकारों ने ऐसा कर भी दिया है।) अतः वे अपने सामानों को छोटे व्यापारियों की तुलना में कम कीमतों पर बेच पाएंगे। अगर आवश्यक हुआ, तो प्रभूत धन वाली वॉलमार्ट और अन्य बहुराष्ट्रीय रिटेल कम्पनियां कुछ सालों तक घाटा सहन करके भी सस्ती कीमतों पर अपना माल बेच सकती हैं, जब तक कि छोटे खुदरा व्यवसायी बाजार से पूरी तरह से बाहर नहीं हो जाते। न केवल किराना भंडार और रेहड़ी वाले व्यवसाय से तौबा करने पर मजबूर हो जाएंगे, बल्कि थोक विक्रेताओं और वितरकों का पूरा ताना‌बाना भी ध्वस्त हो जाएगा।

विकसित देशों में छोटे खुदरा व्यापारों का विनाश

कॉरपोरेट मंडली यह भजन गा रही है कि छोटी दुकानें और मॉल्स–सुपरमार्केट्स दोनों साथ-साथ अस्तित्व में रह सकते हैं। वह झूठ बोल रही है। ऐसा दुनिया के किसी कोने में नहीं हुआ है। विकसित देशों में छोटे खुदरा व्यवसायी लगभग समाप्त हो गए हैं। अमरीका में 1992 से 2007 तक के 15 वर्षों के दौरान खुदरा बाजार के पांच अहम क्षेत्रों में चार सबसे बड़ी कंपनियों का हिस्सा बहुत तेजी से बढ़ा है, जैसा कि तालिका 1 से जाहिर होता है।[39]

तालिका 1: अमरीका में 4 बड़ी कम्पनियों की रिटेल बिक्री में हिस्सेदारी (%)

खुदरा क्षेत्र	1992	2007
खाने-पीने की दुकानें	15.4	27.7
स्वास्थ्य और व्यक्तिगत देखभाल की दुकानें	24.7	54.4
आम सौदे की दुकानें	47.3	73.2
पुस्तकों की दुकानें	41.3	71.0
कम्प्यूटर और सॉफ्टवेयर स्टोर्स	26.2	73.1

स्पष्ट है कि बड़ी रिटेल दुकानों की श्रृंखलाओं का प्रभुत्व छोटे खुदरा व्यापारियों को खत्म करके ही स्थापित हुआ है। रॉबर्ट रैह (बिल क्लिंटन सरकार में रह चुके श्रम मंत्री) ने इसका वर्णन कुछ इस तरह से किया है: वॉलमार्ट "छोटे खुदरा विक्रेताओं से व्यवसाय को चूस कर मुख्य सड़कों को उजाड़ नगरों में बदल देती है।"[40] अमरीका के आयोवा स्टेट युनिवर्सिटी के प्रोफेसर केनेथ स्टोन द्वारा किए गए अध्ययन में पाया गया कि छोटे शहरों में वॉलमार्ट के मॉल्स खुलने के 10 वर्ष बाद

47 फीसदी लघु खुदरा व्यापारी अपनी दुकानें बंद कर चुके थे।[41]

वास्तव में, समूचे अमरीका में बड़ी रिटेल कंपनियों (खासकर वॉलमार्ट) के मॉल्स खुलने से इतने भयानक दुष्परिणाम हुए हैं कि अनेक शहरों और समुदायों—जैसे क्लीवलैंड, शिकागो, सॅन डिएगो, इंग्लेवुड, रोजमीड, लाँग बीच, टक्सन, स्पोकेन और न्यूयार्क सिटी—के लोगों ने संगठित होकर अपने शहरों में वॉलमार्ट के सुपरस्टोर्स न खुलने देने के लिए आंदोलन किये हैं (कम-ज्यादा सफलता के साथ)। वॉलमार्ट ने अपने विरोधियों को झुकाने के लिये और अपने पैर जमाने के लिए हर किस्म की तिकड़मों का सहारा लिया है, जैसे कि स्थानीय स्तर पर दलाल समर्थकों के समूह खड़े करना (2000-05 के बीच अपने समर्थन में अभियान चलाने के लिए वॉलमार्ट ने ऐसे समूहों पर अकेले कैलिफोर्निया में 43 लाख डॉलर खर्च किये), विरोधियों को रिश्वत देना, दुष्प्रचार अभियानों को धन मुहैया कराना और आक्रामक कानूनी हथकंडों का इस्तेमाल करना।[42]

युरोप में 1970 व 1980 के दशकों के दौरान (जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उदय हो रहा था) कई देशों ने कानून बनाकर—जैसे फ्रांस में *लो-रोय* और बेल्जियम में *लो-दे-कादेना* —बड़ी खुदरा कम्पनियों को बढ़ने से रोकने के प्रयास किये। इसके अलावा, इन्होंने बड़े खुदरा व्यापारियों पर कई प्रकार के प्रतिबंध भी लगाये, जैसे कि उन्हें रविवार को दुकानें पूरी तरह से बंद रखनी पड़ती थीं या फिर कुछ घंटों के लिए ही खोलने की इजाजत थी,[43] मॉल्स के आकारों को सीमित किया गया, और मॉल्स को केवल कुछ इलाकों में खोलने की अनुमति थी।[44] लेकिन 1990 के दशक में इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं के हर क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का एकाधिपत्य तेजी से बढ़ने लगा, और इसलिए उनका राजनीतिक दबदबा भी बढ़ने लगा। खुदरा क्षेत्र की बड़ी कंपनियों की लॉबी के दबाव में आकर, अनेक युरोपीय देश बड़े मॉल्स-सुपरस्टोर्स पर लगे प्रतिबंधों को धीरे-धीरे हटाने लगे, और रिटेल क्षेत्र कुछ ही भीमकाय कम्पनियों के हाथों में केन्द्रित होने लगा है।

इसका परिणाम छोटे खुदरा व्यापारियों के लिए विध्वंसकारी रहा है। 2005 आते-आते कई युरोपीय देशों में—डेनमार्क से लेकर स्वीडन, स्विट्जरलैंड, जर्मनी और ब्रिटेन तक—उनके कुल किराना व्यापार के 65 से 75 फीसदी हिस्से पर महज पांच बड़ी कम्पनियों का कब्जा हो चुका था।[45] ब्रिटेन में तो कई इलाकों में देश की सबसे बड़ी खुदरा कम्पनी टेस्को ने खान-पान के बाजार पर लगभग पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया है।[46]

तीसरी दुनिया के देशों में छोटे खुदरा व्यापार का विनाश

1950 व 1960 के दशकों में आजादी प्राप्त करने के बाद तीसरी दुनिया के बहुत

सारे देशों ने शुरूआत में विकसित पूंजीवादी देशों की नकल करते हुए स्वायत्त पूंजीवादी विकास के मॉडल को लागू कर अपने देशों में औद्योगिक क्रांति लाने की कोशिश की थी। इसके लिए उन्होंने जिन नीतियों को लागू किया, उनमें से एक महत्त्वपूर्ण नीति थी अपने देशों में विदेशी पूंजी के प्रवाह को सीमित करना।

लेकिन विकास के इस मॉडल की अन्तर्निहित सीमाएं थीं (इन पर चर्चा करना इस पुस्तिका के दायरे से बाहर है)। 1970 के दशक का अंत होते-होते यह मॉडल विफल होने लगा, और ये देश विदेशी कर्ज के संकट में फंस गए। इनके विदेशी कर्जदाता, यानि अमरीका, पश्चिमी युरोप और जापान जैसे विकसित पूंजीवादी देश, तो ऐसे ही मौके की तलाश में थे। उन्होंने एक साथ मिलकर तीसरी दुनिया के देशों की बांहें मरोड़ कर, इन्होंने अपनी अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी पूंजी व वस्तुओं के प्रवेश पर जो प्रतिबंध लगा रखे थे, उनको हटाने पर मजबूर कर दिया।

इन कर्जदार देशों ने अपनी अर्थनीति में जो परिवर्तन किये, उनमें से एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि इन्होंने अपने खुदरा क्षेत्र को पश्चिमी देशों की बड़ी खुदरा निगमों के लिए खोल दिया। इसके प्रत्याक्षित परिणाम हुएः तुर्की से ब्राजील से दक्षिण अफ्रीका तक, जिस भी तीसरी दुनिया के देश ने अपने खुदरा क्षेत्र में एफडीआई को प्रवेश दिया, वहां बड़ी खुदरा निगमों ने कुछ ही सालों के भीतर लाखों छोटे खुदरा व्यापारियों को व्यवसाय से बेदखल कर खुदरा बाजार के व्यापक हिस्से पर कब्जा कर लिया। वॉलमार्ट मैक्सिको में 1991 में दाखिल हुई थी; मात्र एक दशक (2001) के भीतर उसने खुदरा बाजार के लगभग आधे हिस्से (45.6 प्रतिशत) पर[47] और 2011 तक 55 फीसदी हिस्से पर[48] कब्जा जमा लिया था। ठीक यही कहानी अन्य लातिन अमरीकी देशों में भी दोहराई गई हैः ब्राजील में, 1987 से 1996 के बीच, फल और सब्जी की बिक्री में रेहड़ी बाजार के हिस्से में 27.8 फीसदी की गिरावट आई; अर्जेन्टीना में 1984 से 1993 के बीच छोटी खुदरा दुकानों की संख्या 30 फीसदी से कम हुई, और खुदरा क्षेत्र में रोजगार 26 फीसदी से घट गया; जबकि चिली में 1991-95 के दौरान 'परम्परागत' खानपान के खुदरा व्यापारियों की संख्या लगभग 20 फीसदी से कम हो गई।[49] इन नतीजों को देखते हुए, कई लातिन अमरीकी देश अब खुदरा क्षेत्र में बड़ी कंपनियों के कारोबार को सीमित करने के लिए कानून बना रहे हैं।

पूर्वी एशियाई देशों में 1996-2005 के दशक के दौरान खाद्यान्नों की खुदरा बिक्री में सुपरमार्केट्स का हिस्सा 20 फीसदी से बढ़कर 50 फीसदी पहुँच गया।[50] लघु खुदरा बाजारों की इतनी तबाही हुई कि कई जगह दंगे तक भड़क उठे, और मजबूर होकर कई देशों को बड़ी खुदरा निगमों पर नियंत्रण लगाने पड़े हैं।[51]

इन विशालकाय खुदरा निगमों को भारतीय खुदरा बाजार में घुसने की

इजाजत मिलने के बाद उसके परिणाम कुछ भिन्न नहीं होने वाले हैं। ये कंपनियां भारत के अंसगठित खुदरा बाजार को नष्ट कर देंगी।

रोजगार निर्मिति का मिथक

लिहाज़ा, ये बड़े खुदरा निगम भारत में रोजगार का निर्माण करेंगे, यह एक और मिथक है। ये निगम अधिक से अधिक कुछ हजार लोगों को काम देंगे; लेकिन दूसरी तरफ दसियों लाख खुदरा व्यापारियों की आजीविका नष्ट कर देंगे। (छोटे उत्पादकों और खेती पर जो बुरा प्रभाव पड़ेगा सो अलग है; इस पर आगे चर्चा की गयी है।) एक अनुमान के मुताबिक, वॉलमार्ट का एक सुपरमार्केट अपने आस-पास के 1300 खुदरा स्टोर्स को विस्थापित कर देता है और 3,900 लोगों की नौकरियां नष्ट कर देता है। सुपरमार्केट में लगी हर एक नौकरी के पीछे अंसगठित खुदरा क्षेत्र से लगभग 17 नौकरियां खत्म हो जाती हैं।[52] भारत में छोटे खुदरा व्यवसाय में चार करोड़ लोग नियोजित हैं, और अगर हम प्रत्येक के पीछे कम से कम तीन परिवारजनों को आश्रित मानें, तो इसका अर्थ यह हुआ कि खुदरा बाजार से लगभग 16 करोड़ लोगों की रोजी-रोटी जुड़ी हुई है। जाहिर है कि भारत में वॉलमार्ट जैसी निगमों के सुपरमार्केट्स के प्रवेश का अत्यधिक विनाशकारी असर होगा।

इन सुपरबाजारों में जो नौकरियां मिलेंगी, वे भी बहुत कम पगार वाली होंगी। वैसे भी वॉलमार्ट औद्योगिक क्षेत्र के मानकों से काफी कम वेतन देने के लिए दुनियाभर में बदनाम है। यह स्थिति अमरीका में भी है। वॉलमार्ट अमरीका में निजी क्षेत्र का सबसे बड़ा नियोक्ता है, इसने करीबन 14 लाख लोगों को काम पर लगा रखा है (अमरीका की 14 करोड़ श्रमजीवी आबादी का एक फीसदी)।[53] वॉलमार्ट अपने कामगारों को 'सहयोगी' (associates) कहती है, लेकिन औसत वेतन मात्र प्रति घंटे 11.75 डॉलर या प्रतिवर्ष 20,774 डॉलर देती है, जो कि अमरीकी संघीय गरीबी रेखा से छह फीसदी कम है। इतना ही नहीं, वॉलमार्ट के एक बड़ा नियोक्ता होने के चलते, जब यह किसी शहर में अपना सुपरबाजार खोलती है, तो वहां के कामगारों की दिहाड़ी कम हो जाती है, क्योंकि स्थानीय खुदरा व्यापारी वॉलमार्ट से प्रतिस्पर्द्धा में टिके रहने के लिये अपने कर्मचारियों का वेतन घटा देते हैं।[54] इससे भी खराब यह कि वॉलमार्ट का अपने श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार करने का लंबा रिकार्ड रहा है—कामगारों से तय किये घंटों से ज्यादा काम लेना, छोटी-सी भूलों पर उन्हें दंडित करना, बाल श्रमिकों व अवैद्य श्रमिकों से काम लेना, स्त्री कामगारों से भेदभावपूर्ण व्यवहार करना और मजदूर संघों को ध्वस्त करने के हर संभव प्रयत्न करना।[55] इस प्रकार का शोषण करने के इनामस्वरूप, वॉलमार्ट के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीईओ) माइकेल ड्यूक की सालाना तनख्वाह 3.5 करोड़

डॉलर है, यानि इसकी एक घंटे की पगार कम्पनी के औसत कामगार की वार्षिक पगार के बराबर है।[56]

इन अपराधिक कॉरपोरेट निगमों को भारत में घुसने की अनुमति देने के पहले से ही भारत सरकार पिछले एक दशक से देश के श्रम कानूनों को बदलकर इनको इन विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कामगार नीतियों के अनुरूप कर रही है—ताकि वे कामगारों को जब चाहे निकाल सकें, ठेके पर रख सकें, कम सुविधाएं दें, काम के घंटे बढ़ा सकें, इत्यादि।

खुदरा व्यापार सम्भवतः देश में मौजूद भयानक बेरोजगारी/अल्प-बेरोजगारी का सबसे बड़ा 'छुपा हुआ रूप' है। विनिर्माण और कृषि क्षेत्र में रोजगार निर्मिति में ठहराव के कारण, आम लोगों के लिये खुदरा व्यापार की विभिन्न गतिविधियां—जैसे घर-घर जाकर सामान बेचना, गलियों में ठेले पर सामान बेचना या छोटी दुकान खोलना—बेरोजगारी दूर करने के अंतिम उपाय हैं। आज खुदरा व्यापार में लगे बहुत से लोग गरीबी रेखा से भी नीचे गुजारा करते हैं। ऐसे में खुदरा बाजार को एफडीआई के लिए खोलने का मतलब होगा पहले से ही गरीबी रेखा के नीचे गुजर-बसर कर रहे लाखों लोगों को अकिंचनता में धकेलना।

4. क्या किसानों को फायदा होगा?

यदि सरकार की बात मान ली जाय कि खुदरा क्षेत्र में एफडीआई के आने से किसानों को लाभ मिलेगा, तो खुदरा निगमों ने अमरीका और युरोप के किसानों को भी जरूर ही फायदा पहुंचाया होगा। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। बीज और खाद से लेकर खुदरा बाजार तक, कृषि से संबंधित हर क्षेत्र पर प्रभुत्व जमाए हुए एकाधिकारी कॉरपोरेट घरानों ने अमरीका के कृषि पर आश्रित परिवारों को तबाह कर दिया है। वर्तमान में अमरीका में 10 लाख से भी कम लोग खेती से अपनी जीविका चलाते हैं। यह संख्या 1950 के दशक में ढाई करोड़ से भी ज्यादा थी।[57] इसी तरह युरोप में भी हर मिनट एक किसान खेती छोड़ देता है।

सभी विकसित देशों में सरकारें किसानों को बहुत बड़ी मात्रा में सब्सिडी देती हैं। यदि वे ऐसा नहीं करती, तो उनके यहां खेती अभी तक नष्ट हो गई होती। आर्थिक सहयोग और विकास के लिए संगठन (OECD, 34 विकसित देशों की सदस्यता वाली एक अंतरराष्ट्रीय संस्था) की 2010 रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि खेती पर सब्सिडी 2008 में 21 फीसदी थी, जो 2009 में बढ़कर 22 फीसदी हो गई। केवल 2009 में OECD देशों द्वारा दी गई कृषि सब्सिडी की कुल राशि 12600 अरब रुपये थी।[58]

निगमों द्वारा उत्पादन संघ बनाकर दाम गिराना

बहुराष्ट्रीय कंपनियां इतनी विशालकाय हैं कि वे पूरी आपूर्ति श्रृंखला—प्रसंस्करण से लेकर व्यापार से लेकर खुदरा तक—पर अपना एकाधिकार कायम कर लेती हैं। जैसे कि पहले चर्चा की जा चुकी है, वे आपस में प्रतिस्पर्द्धा नहीं करती हैं, उलट, आपस में सांठगांठ कर, चीजों के मूल्य तय करती हैं। यही कारण है कि वे किसानों और छोटे उत्पादकों से उनके उत्पाद स्वतः निर्धारित कीमतों पर खरीदती हैं। इन मुट्ठीभर कम्पनियों द्वारा लगाये गये मूल्यों पर अपने उत्पाद बेचने के अलावा किसानों के पास और कोई चारा नहीं होता (क्योंकि पूरा खुदरा बाजार इन निगमों के नियंत्रण में है)। विशालकाय रिटेल निगम अपनी मनमर्जी से खरीद मूल्यों को गिराते जाते हैं और किसानों को बर्बादी की तरफ धकेल देते हैं। युरोप और अमरीका में खेतिहर परिवारों की तबाही का यही कारण है।

इसके कुछ उदाहरण। खुदरा व्यापार में एकाधिकार का किसानों पर प्रभाव इस आंकड़े से समझा जा सकता है कि सुपरबाजारो में खाद्यान्न सामग्री पर खर्च हुए प्रत्येक डॉलर—जिसे खुदरा खाद्य डॉलर कहते हैं—का कितना हिस्सा किसानों को मिलता है। 1970 में अमरीका के सुअर पालकों को सुअर के गोश्त पर खर्च हुए प्रत्येक खुदरा डॉलर में से 48 सेंट्स मिलते थे (एक डॉलर = 100 सेंट्स); तीन दशक बाद उनका हिस्सा घट कर मात्र 12 सेंट्स रह गया था। यह तब, जब कि सुपरबाजारों के दामों में कोई बदलाव नहीं हुआ था, यानि कि सुपरबाजारों ने सारा मुनाफा खुद ही हड़प लिया था और उपभोक्ताओं को फायदे का थोड़ा भी हिस्सा नहीं दिया था। ब्रिटेन में सुपरबाजारों में उपभोक्ता दो लीटर दूध 1.45 पौंड में खरीदते हैं, जिसमें से किसानों को सिर्फ 58 पेंस (40 फीसदी) मिलता है (1 पौंड = 100 पेंस)। 'ब्रिटेन का रॉयल दुग्ध उत्पादक संघ' के मुताबिक दुग्ध उत्पादक किसान हर दो लीटर दूध पर तीन पेंस का नुकसान उठाते हैं। परिणामस्वरूप कई छोटे दुग्ध उत्पादक किसानों ने अपना धंधा बंद कर दिया है।[59]

जितना बड़ा खुदरा कारोबारी होगा, वह आपूर्तिकर्ताओं से उतनी ही कम कीमत पर उनके सामान खरीद पाता है। ब्रिटिश प्रतिस्पर्द्धा आयोग ने अपने अध्ययन में पाया है कि टेस्को (ब्रिटेन की सबसे बड़ी खुदरा निगम) ने नियमित रूप से आपूर्तिकर्ताओं को औसत औद्योगिक मूल्य से चार फीसदी कम दाम दिया है, जबकि छोटे सुपरबाजारों ने इस औसत दर से ज्यादा दाम दिया है।[60]

छोटे किसानों की स्थिति इतनी बिगड़ती जा रही है कि फरवरी 2008 में युरोपीय संसद ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया है: "संपूर्ण युरोपीय संघ में मुट्ठीभर सुपरबाजार श्रृंखलाओं ने खुदरा व्यापार पर अपना आधिपत्य जमा लिया है ... सभी उपलब्ध तथ्यों से यही जाहिर होता है कि बड़े सुपरबाजार अपनी

खरीदी क्षमता का दुरुपयोग करते हुए आपूर्तिकर्ताओं को दिए जाने वाले दामों को असह्य स्तरों तक जबरन गिरा रहे हैं और उन पर अनुचित शर्तें थोप रहे हैं।"[61]

तीसरी दुनिया के उत्पादकों का गला घोंटना

बड़ी खुदरा कम्पनियों से तीसरी दुनिया के देशों के किसानों को भी कोई फायदा नहीं हुआ है। एक दशक पहले, तीसरी दुनिया के कॉफी उत्पादक 30 अरब डॉलर के वैश्विक बाजार में से 10 अरब डॉलर की कमाई करते थे; अब उन्हें 60 अरब डॉलर के वैश्विक बाजार से सिर्फ 6 अरब डॉलर ही मिल पाते हैं। इसी प्रकार, घाना के कोको पैदा करने वाले किसानों को चॉकलेट की कीमत का अब केवल 3.9 फीसदी मिलता है, जबकि खुदरा व्यापारियों का अंश 34.1 फीसदी है।[62] ब्रिटेन में उपभोक्ताओं द्वारा केले पर खर्च किए गए हर एक पौंड में से इक्वाडोर के केला बागानों के कामगारों को सिर्फ 1.5 पेंस मिलता है, जबकि सुपरबाजार करीब 40 पेंस हड़प लेते हैं।[63] जहां अफ्रीकी सेब उत्पादकों को निर्यातित सेब के खुदरा दाम का सिर्फ नौ फीसदी मिलता है, वहीं ब्रिटेन के खुदरा निगम 42 फीसदी हिस्से पर कब्जा कर लेते हैं।[64]

अनुचित शर्तों का थोपना

बड़े खुदरा निगमों के पास किसानों को तबाह करने के अन्य तरीके भी हैं, जैसे, किसानों द्वारा उत्पादित माल पर कड़े मापदण्ड लगाना। उत्पादकों से यह आशा की जाती है कि उनके उत्पाद खुदरा निगमों द्वारा तय किए गए कठोर मानकों पर खरे उतरें, बाजारों के रुझानों के अनुसार वे अपनी उत्पादन मात्रा कम समय के भीतर बदलें, उत्पादों के बेहतर रख-रखाव हेतु शीत भंडारों (कोल्ड स्टोरेज) का इंतजाम करें, इत्यादि। इन शर्तों की पूर्ति के लिए सिंचाई, ढुलाई, भंडारण सुविधा व पैकिंग तकनीक में बहुत अधिक पूंजी निवेश की आवश्यकता है। अधिकांश छोटे उत्पादकों के पास इन मांगों को पूरा करने के लिए आर्थिक और प्रबंधकीय संसाधन नही होते हैं। परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में छोटे किसान खेती छोड़ने पर विवश हो रहे हैं, और उनकी जगह बड़े किसान या फिर स्वयं निगम ले रहे हैं।[65]

उदाहरण के लिए, ब्राजील में, नेस्ले (स्विट्जरलैण्ड स्थित बहुराष्ट्रीय कम्पनी) और पर्मलॅट (इटली की बहुराष्ट्रीय कम्पनी) ने पहले देश के सहकारी दुग्ध संघों को खरीद लिया, और फिर छोटे किसानों पर ऐसे मानकों को थोपना शुरू किया, जिन्हें पूरा कर पाना इनके लिए अत्यंत दुष्कर था। जैसे, उन्होंने मांग की कि किसान दूध ठंडा रखने की टंकियों (शीतकरण यंत्र) को अपने यहां लगाएं। सबसे छोटी टंकी की क्षमता 100 लीटर थी, जबकि औसत किसान रोजाना केवल 50 लीटर दूध का उत्पादन कर पाता था। अधिकतर छोटे किसान शीतकरण यंत्र लगाने का खर्च

वहन नहीं कर सकते थे। इस तरह की शर्तों ने 50 हजार दुग्ध उत्पादक किसानों को आपूर्ति श्रृंखलाओं से बाहर कर दिया; नतीजतन, कई किसानों ने तो दूध का धंधा ही छोड़ दिया।[66] इसी तरह, अर्जेन्टीना में आपूर्ति श्रृंखला पर निगमों का नियंत्रण स्थापित हो जाने की वजह से दुग्ध उत्पादक किसानों की संख्या 1983 में 40 हजार से घट कर 2001 में मात्र 15 हजार रह गई थी।[67] मैक्सिको के खुदरा व्यापार पर वॉलमार्ट का जबरदस्त प्रभुत्व एक अहम कारण है जिसकी वजह से 12.5 लाख से ज्यादा छोटे किसानों—देश के किसानों का 25 फीसदी—को पिछले दो दशकों में खेती छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा है।[68]

ब्रिटिश स्पर्द्धा आयोग द्वारा 1999 में की गई जांच में भी यही देखने को मिला। उसने पाया कि किराना सुपरबाजारों के आपूर्तिकर्ताओं को बड़ी खुदरा कंपनियों द्वारा थोपी गई शर्तों को मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जैसे कि—दाम में छूट देना, बिना किसी पूर्व सूचना के करार की शर्तों को बदलना, इत्यादि।[69]

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपनी एकाधिकारी ताकत का फायदा उठाकर छोटे किसानों के साथ और भी कई प्रकार के अन्यायपूर्ण व्यवहार करती हैं। इसमें शामिल हैं: उत्पादों के भुगतान में विलम्ब करना, आखिरी वक्त में दामों में कमी करना, पूर्वनिर्धारित मात्रा से कम सामान खरीदना, सामान की गुणवत्ता और माप निर्धारण की प्रक्रिया का पारदर्शी न होना, कर्ज पर ज्यादा ब्याज लगाना, और गुणवत्ता के मापदण्ड को बिना पर्याप्त सूचना के बदल देना।[70]

भारत के छोटे किसानों पर एफडीआई का प्रभाव

इन सब तथ्यों की रोशनी में यह स्पष्ट है कि भारत के खाद्यान्न बाजार में बड़े खुदरा निगमों के प्रवेश का भारत के 65 करोड़ किसानों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा।

आज एपीएमसी अधिनियम की वजह से किसानों के पास यह विकल्प है कि वे अपने कृषि उत्पादों को मंडी में या तो स्वयं या किसी एजेंट के द्वारा बेचें जो उन्हें सबसे बेहतर कीमत देता हो। क्योंकि खरीददार कई होते हैं, इसलिए किसानों को उनके उत्पाद के अच्छे दाम मिल जाते हैं। अब केन्द्र सरकार राज्यों पर एपीएमसी एक्ट में संशोधन लाने के लिए दबाव डाल रही है, ताकि कृषि व्यावसायिक निगमें (agribusiness corporations) किसानों से सीधे करार कर कृषि उत्पाद खरीद सकें।[71] इसका एक परिणाम यह होगा कि मंडी व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। यह इसलिए क्योंकि इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास बहुत अधिक आर्थिक ताकत है और ये शुरूआत में किसानों को मंडी की अपेक्षा बेहतर मूल्य अदा करेंगी (जैसा कि कुछ राज्यों में ये कर भी रही हैं जिन्होंने अपने एपीएमसी एक्ट में संशोधन कर दिया है)।

अतः आने वाले वर्षों में ये कम्पनियां धीरे-धीरे किसानों से कृषि उत्पादों को खरीदने की व्यवस्था पर अपना एकाधिकार जमा लेंगी।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बहुराष्ट्रीय निगम दामों को लेकर आपस में प्रतिस्पर्द्धा नहीं करते। इसलिये, भारत के कृषि क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित कर लेने के बाद बहुराष्ट्रीय खुदरा निगम या तो अलग-अलग क्षेत्रों में काम करेंगे या फिर मिलजुल कर दाम तय करेंगे। मंडियां बंद हो जाने और बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा खरीद प्रणाली पर प्रभुत्व जमा लेने के बाद फिर वे खरीद मूल्यों को गिराना शुरू कर देंगे, जैसा कि उन्होंने समूचे विश्व में किया है। किसानों के पास उन्हें ही बेचने के अलावा और कोई चारा नहीं होगा। इसके अलावा, खुदरा निगम अब ऐसी स्थिति में होंगे कि वे किसानों पर कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, उनकी आपूर्ति की समय सारिणी और इस प्रकार की अन्य शर्तें थोप सकेंगे, जिसे हमारे छोटे उत्पादक किसानों के लिए पूरा कर पाना बहुत मुश्किल होगा।

अंत में, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और 'भारतीय किसानों के अन्य मित्रों' के इस दावे पर एक नजर डालते हैं, कि खुदरा क्षेत्र में एफडीआई के आने से आधुनिक भंडारण की सुविधाओं का निर्माण होगा, जिससे फल-सब्जियों का सड़ना कम हो जायेगा और किसानों को लाभ मिलेगा। यह एक बेहूदा तर्क है। यह तो सरकार का कर्तव्य है कि वह ये सुविधाएं सार्वजनिक क्षेत्र में मुहैया कराए, या फिर किसान सहकारी संस्थाओं को अनुदान देकर इनका निर्माण करने के लिये प्रोत्साहित करे। वहीं दूसरी तरफ, अगर विदेशी बहुराष्ट्रीय खुदरा निगम इन सुविधाओं का निर्माण करेंगे, तो वे यह अपने फायदे के लिए करेंगे न कि किसानों की खातिर। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सामाजिक कार्यकर्ता नहीं हैं!

फिर सरकार ऐसी सुविधाओं के निर्माण में निवेश क्यों नहीं कर रही है? वह क्यों कृषि व्यावसायिक निगमों एवं बड़े खुदरा व्यापारियों को ऐसा करने के लिए बढ़ावा दे रही है? यह वैश्वीकरण के घिनौने एजेंडे का हिस्सा है (इसके बारे में आगे चर्चा की गयी है), जिसे भारत के दास शासक विश्व बैंक और भारत के विदेशी कर्जदाताओं के आदेशों पर लागू कर रहे हैं। वैश्विक कृषि व्यावसायिक निगम भारत के कृषि क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं, और इसके लिए वे भारत सरकार पर दबाव डाल रहे हैं कि वह कृषि को दी जाने वाली सब्सिडी समाप्त करे व इस क्षेत्र में अपने पूंजीनिवेश को घटाये ताकि वे निवेश करके सरकार की जगह ले सकें। भारत सरकार उनकी इच्छाओं की नतमस्तक भाव से पूर्ति कर रही है।[72]

पिछले दो दशकों के दौरान, जबसे सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को धीरे-धीरे एफडीआई के प्रवाह के लिए खोला है, तबसे कृषि क्षेत्र का संकट गहराता जा रहा है। सरकारी पूंजीनिवेश में कमी, खेती का बढ़ता लागत मूल्य,

खाद-सिंचाई-बिजली में मिलने वाली सब्सिडी में कटौती, बैंकों से मिलने वाले सस्ते ऋणों में कटौती जिसके कारण किसान स्थानीय सूदखोरों पर आश्रित होते जा रहे हैं—इस तरह की विश्व बैंक द्वारा लादी गई शर्तों के कारण लाखों किसानों की आर्थिक हालत गर्त में पहुँच गई है। इसने देश के इतिहास में पहली बार किसानों की खुदकुशी की एक भयानक लहर को जन्म दिया है। इसके अलावा पिछले एक दशक में 75 लाख किसानों ने खेती छोड़ दी है।[73]

इसके बावजूद जोंकों का मन भरा नहीं है। वे 'आर्थिक सुधारों' के एक 'नये दौर' को लागू करने के लिए भारत सरकार की बांह मरोड़ रहे हैं। उनके इशारों पर लागू की जा रही नवीनतम नीति, खुदरा बाजार में एफडीआई, तो भारतीय किसानों के लिए मौत का फतवा साबित होगी।

5. रिटेल निगम छोटी कंपनियों को भी तबाह करते हैं

वॉलमार्ट जैसी बड़ी खुदरा निगमों के पास इतनी ज्यादा आर्थिक शक्ति है कि वे दुनिया के स्तर पर सबसे कम मूल्य का सामान बनाने वाले उत्पादकों से सामान खरीद सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, वॉलमार्ट अमरीका में 1995 में जो कुल समान बेचती थी, उसका मात्र 6 फीसदी आयात होता था; 2005 तक यह आंकड़ा बढ़कर 60 फीसदी हो गया था, जिसकी आपूर्ति 63 देशों के 6000 से अधिक आपूर्तिकर्ता करते थे।[74]

वॉलमार्ट जैसी निगमों के लिए भारत के दरवाजे खुल जाने के बाद भारतीय कंपनियों को जल्दी ही विश्वभर के सबसे कम कीमत वाले उत्पादों के साथ स्पर्द्धा करनी पड़ेगी। यदि भारतीय कंपनियां किसी तरह से इस प्रतिस्पर्द्धा में टिकी भी रह पाती हैं, तो भी वॉलमार्ट जानबूझ कर दाम गिराकर उन्हें बर्बाद कर सकती है, क्योंकि उसके पास घाटा सहन करने की अपार वित्तीय ताकत है। पर्मलॅट, जो दुग्ध उत्पादों में विश्वभर में अग्रणी है, ने जब दक्षिण अफ्रीका के डेयरी बाजार में 1990 के दशक में प्रवेश किया था, तब उसने खुदरा व्यापारियों को अपने डेयरी उत्पाद कम दामों पर बेचकर बाजार में अपने लिए जगह बनाई थी। परिणामस्वरूप, कई स्थानीय दुग्ध उत्पादकों व प्रसंस्करण कंपनियों को अपना धंधा बंद करना पड़ा।[75]

कामगारों की बदहाली

इतना ही नहीं, वॉलमार्ट इतनी बड़ी कम्पनी है और आपूर्तिकर्ताओं से माल खरीदने की उसकी क्षमता इतनी ज्यादा है कि वह उन पर अपनी शर्तें थोप सकती है। वह उन्हें बहुत कम दामों पर उत्पाद बेचने पर मजबूर करती है, जिससे आपूर्तिकर्ता देशों के कामगारों की स्थिति बद से बदतर हो जाती है।

व्यापार में कोई नैतिकता या आचार-संहिता नहीं होती। वॉलमार्ट को ऐसे देशों से माल खरीदने में कोई परेशानी नहीं होती, जहां बाल मजदूरी, कामगारों की गुलामों जैसी स्थिति और उनके मानवाधिकारों का हनन आम बात है। होंडुरास में वॉलमार्ट के लिए काम करने वाले कामगारों को हर रोज 14 घंटे की शिफ्ट में हफ्ते में 88 घंटे तक काम करना पड़ता है। उन्हें 43 सेंट्स प्रति घंटे के हिसाब से वेतन मिलता है, जिसमें कि जीवन की जरूरी आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं हो पाती है। वॉलमार्ट द्वारा बेचे गए कपड़े बांग्लादेश की युवतियां बनाती हैं, जिन्हें सप्ताह के सातों दिन सुबह सात बजे से रात के आठ बजे तक काम करना पड़ता है और सिर्फ नौ से बीस सेंट्स प्रति घंटे के हिसाब से वेतन मिलता है। बीमार होने व बच्चा पैदा होने पर कोई छुट्टी व सुविधाएं नहीं दी जाती; शौचालय जाने पर भी निगरानी रखी जाती है; और अगर कोई अपने हक मांगने की जुर्रत करती है तो उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है।[76] इतनी बुरी काम की परिस्थितियों के बावजूद अमरीका में बिक रही कमीज की खुदरा कीमत में से बांग्लादेशी कामगारों को मात्र 1.7 फीसदी हिस्सा मिलता है, जबकि वॉलमार्ट को 71.8 फीसदी।[77]

वॉलमार्ट चीन से अधिकाधिक माल खरीदती है क्योंकि वहां की सरकार ने मजदूर संघों पर प्रतिबंध लगाया हुआ है; वह मजदूरों को संगठित करने की कोशिश करने वालों को कड़े दंड देती है; और वहां की अदालतें और नियामक संस्थाएं मजदूरों के अधिकारों के उल्लंघनों को नजरअंदाज करती हैं। इसका फायदा उठाकर वॉलमार्ट आपूर्तिकर्ताओं को एक दूसरे के विरोध में खड़ा कर, उनसे बहुत कम दामों पर सामान खरीद लेती है। परिणामस्वरूप, वॉलमार्ट को सामान मुहैया कराने वाली चीन की फैक्टरियों में कामगारों को बहुत कम पगार दी जाती है, उनसे एक दिन में 15 घंटे और हफ्ते के सातों दिन काम काम लिया जाता है, उन्हें खतरनाक मशीनों पर और विषैले रसायनों के साथ काम करना पड़ता है, और यहां तक कि बाल कामगारों को भी काम पर लगाया जाता है।[78]

इसका मतलब यह हुआ कि वॉलमार्ट जैसी विशालकाय खुदरा निगमों के सुपरस्टोर्स भारत में खुल जाने के बाद भारतीय कल-कारखानों में कार्यरत कामगारों को ऐसे कम वेतन वाले कामगारों के साथ स्पर्द्धा करनी पड़ेगी। इस स्पर्द्धा में वही टिक पाएगा जो कम से कम वेतन और बद से बदतर स्थितियों में काम करने को तैयार होगा।

6. क्या ग्राहकों को लाभ होगा?

यह प्रचारित किया जा रहा है कि खुदरा निगमों के सुपरबाजार बिचौलियों का खात्मा कर देंगे, जिसके परिणामस्वरूप ग्राहकों को वस्तुएं कम कीमतों पर मिलेंगी।

यह एक और झूठ है। वास्तव में कॉरपोरेट रिटेल निगम संपूर्ण आपूर्ति श्रृंखला पर अपना एकाधिकार कायम कर लेते हैं, यानि वे खुद ही उत्पादक, थोक विक्रेता, वितरक व रिटेल दुकानदार, सब एक साथ बन जाते हैं। इस तरह, खुदरा निगम स्वयं ही विशालकाय बिचौलिये बन जाते हैं। एक बार वे इसमें सफल हो गए, तो फिर वे अपने विशाल मुनाफे का थोड़ा-सा भी हिस्सा उपभोक्ताओं को क्यों देना चाहेंगे? उनका तो उद्देश्य ही अधिकतम मुनाफा कमाना है, वे ग्राहकों के लिये कीमतें कत्तई कम नहीं करेंगे।

उलट, बहुराष्ट्रीय कम्पनियां बाजार पर अपने प्रभुत्व का फायदा उठाकर उपभोक्ता वस्तुओं के दाम बढ़ाती हैं और इस प्रकार बेहिसाब मुनाफा कमाती हैं। हां, शुरूआत में, जब विशाल खुदरा कम्पनियां छोटे खुदरा व्यापारियों के साथ स्पर्द्धा कर रही होती हैं, ऐसे में थोड़े समय के लिये उपभोक्ता सस्ती कीमतों का फायदा उठा सकते हैं। लेकिन जैसे ही बड़े निगम बाजार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं, वे कीमतें बढ़ा देते हैं। यहां तक कि जब उत्पादन के बढ़ने के चलते लागत मूल्य गिरता है, तब भी वे वस्तुओं के विक्रय दाम नहीं घटाते। पूरी दुनिया में फैले उनके कारोबार में यही देखने को मिलता है। निकारागुआ और अर्जेंटीना से लेकर केन्या, थाईलैंड और वियतनाम तक, इन सभी देशों के सुपरबाजारों में वस्तुओं के दाम परम्परागत बाजारों की तुलना में अनुमानतः 10 से 14 फीसदी ऊंचे हैं।[79]

फ्रांस सरकार की खाद्यान्न मूल्यों पर निगरानी रखने वाली संस्था द्वारा जून 2011 में तैयार की गई एक रिपोर्ट ने सुपरबाजारों पर आरोप लगाया है कि वे उत्पादकों को कम दाम देकर उन्हें निचोड़ रहे हैं लेकिन इस लाभ का थोड़ा भी हिस्सा उपभोक्ताओं को नहीं दे रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि सुपरबाजार बेशुमार मुनाफा कमा रहे हैं: केले और सेब पर उन्हें 140 फीसदी तक, और गाजर और सलाद में 110 फीसदी तक, का फायदा हो रहा है; सुअर के गोश्त पर लाभ पिछले एक दशक में 39 फीसदी से बढ़कर 55 फीसदी हो गया है।[80] इसी तरह, ब्रिटेन के राष्ट्रीय खेतिहर संघ (National Farmers Union) ने भी पाया कि कृषि उत्पादों के दामों में गिरावट का लाभ उपभोक्ताओं तक नहीं पहुंच रहा है। उदाहरणतः 1990 के दशक में दूध और मेमने के गोश्त के दामों में भारी गिरावट के बावजूद खुदरा बाजारों में इनकी कीमतों में कोई कमी नहीं देखी गई।[81] अमरीका में सुपर बाजारों ने 1994 और 2004 के बीच टमाटर के भाव 46 फीसदी बढ़ा दिए थे, जबकि कृषि उत्पादकों को मिलने वाले दामों में 25 फीसदी की गिरावट आई थी।[82]

यही कहानी भारत के चाय बागानों में दोहराई जा रही है। एक गैर-सरकारी संगठन 'एक्शनएॅड' द्वारा कुछ साल पहले किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि

कॉरपोरेट घरानों की तरफ से बड़े पैमाने पर खरीदारी करने वाली कम्पनियों ने आपस में एक संघ बनाकर चाय की कीमतें गिरा दी थीं; नतीजतन दक्षिण भारत में चाय की नीलामी कीमतों में लगभग 33 फीसदी की गिरावट आई थी—वह 1998 में प्रति किलोग्राम 69 रुपये से घटकर 2004 में 46 रुपये हो गयी थी। उत्तर भारत में, इसी अवधि में, चाय की कीमतों में 12 फीसदी की गिरावट आई थी। चाय का दाम उत्पादन मूल्य से भी कम हो गया था—2004 में यह लगभग 75 रु. था। इसका चाय के छोटे उत्पादक किसानों और बागानों के कामगारों पर विनाशकारी असर हुआ। लेकिन नीलामी कीमतों में गिरावट के बावजूद उपभोक्ता कीमतों में कोई कमी नहीं आई। खुदरा बाजार में चाय के दाम लगातार ऊंचे बने रहे, 160 रुपये प्रति किलो। परिणामत: हिन्दुस्तान लीवर जैसी बड़ी चाय कम्पनियों ने भारी मुनाफा बटोरा। हिन्दुस्तान लीवर का भारतीय चाय बाजार में 34 फीसदी हिस्सा है; उसके शेयरधारियों को मिले लाभांश में 1996 से 4 गुना की बढ़ोतरी हुई है।[83]

7. खुदरा व्यापार में एफडीआई: किसके हित में?

स्पष्टतः खुदरा क्षेत्र में एफडीआई के अंतर्प्रवाह को अनुमति देने का भारतीय खुदरा क्षेत्र पर विध्वंसक परिणाम होने वाला है। लाखों छोटे-छोटे दुकानदार एवं फेरीवाले अपने व्यवसाय को छोड़ने पर मजबूर होंगे, और बेरोजगारी भयानक रूप से बढ़ जाएगी। इतना ही नहीं, इसका छोटी कंपनियों एवं छोटे किसानों पर भी बेहद विनाशकारी परिणाम होगा, जो पिछले दो दशकों से अर्थव्यवस्था को धीरे-धीरे विदेशी पूंजी निवेश के लिए खोले जाने के कारण पहले से ही संकटग्रस्त हैं। न ही उपभोक्ताओं को कोई फायदा होने वाला है: यह धारणा कि खुदरा क्षेत्र में एफडीआई के आने से बढ़ती महंगाई पर लगाम लगेगी और कीमतें कम होंगी, एक भ्रम है।

यदि इसके इतने विध्वंसक परिणाम होने वाले हैं, तो भारत सरकार इन विशालकाय विदेशी खुदरा कम्पनियों को देश में मॉल्स-सुपरबाजार खोलने की इजाजत क्यों दे रही है? हमारी सरकार विदेशी कम्पनियों को लाभ पहुंचाने के लिए अपने देशवासियों के हितों को क्यों गिरवी रख रही है?

वैश्वीकरण: भारत 'बिक्री' के लिये

दरअसल, ऐसा पिछले दो दशकों से हो रहा है। 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था विदेशी कर्ज के जाल में बुरी तरह फंस गयी थी और इसलिये देश का विदेशी मुद्रा भंडार दिवालिया होने के कगार पर था। भारत के विदेशी कर्जदाताओं ने, यानि अमरीका और अन्य विकसित देशों ने—जिन्हें साम्राज्यवादी देश भी कहा जाता है—इस संकट का फायदा उठाते हुए भारत सरकार पर सख्त शर्तें थोप दीं। विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (जो इन्हीं के नियंत्रण में हैं) के माध्यम से इन्होंने

भारत सरकार की बांहें मरोड़कर उसे भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्रचना करने के लिए मजबूर कर दिया। इस तथाकथित 'ढांचागत समायोजन कार्यक्रम' (Structural Adjustment Program) के बुनियादी तत्व थे:

- विदेशी वस्तुओं के आयात पर लगे तमाम प्रतिबंधों को हटाना;
- अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में विदेशी निवेश पर लगे तमाम प्रतिबंधों को समाप्त करना;
- सार्वजनिक क्षेत्र को निजी हाथों में देना, यहां तक कि लोक-कल्याणकारी सेवाओं को भी;
- नफाखोरी पर लगे सभी प्रतिबंधों को हटाना, यहां तक कि पेयजल, खाद्यान्न, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी आवश्यक सेवाओं में भी।

विदेशी कर्जदाताओं के इशारे पर भारतीय अर्थव्यवस्था की इस पुनर्रचना को नाम दिया गया है, वैश्वीकरण। तब से केंद्र और राज्यों में सरकारें बदलती रही हैं, लेकिन अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण बिना किसी रुकावट के आगे बढ़ता जा रहा है।

वैश्वीकरण का सार यह है कि भारत सरकार अब अर्थव्यवस्था को सिर्फ विशालकाय विदेशी निगमों और उनके कनिष्ठ साझेदार, भारत के बड़े औद्योगिक घरानों, के महत्तम मुनाफे के लिए चला रही है। इन निगमों को बेलगाम लूट की पूरी छूट मिली हुई है। वे हमारे पहाड़ों, नदियों और जंगलों की अथाह प्राकृतिक संपदा को लूटने में लगे हुए हैं। वे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों और बीमा कम्पनियों समेत संपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों को, जिन्हें आम जनता की खून-पसीने की गाढ़ी कमाई से खड़ा किया है, कौड़ियों के मोल खरीद रहे हैं। वे भारतीय कृषी पर अपना वर्चस्व स्थापित कर उसे वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था के उपांग में परिवर्तित कर रहे हैं। निजीकरण के चलते वे आवश्यक सेवाओं—शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, परिवहन, यहां तक कि पीने का पानी भी—को अपने कब्जे में कर इन्हें नग्न मुनाफाखोरी के साधन में परिवर्तित कर रहे हैं।

भारत सरकार ने देश के भविष्य के बारे में चिंता करना बंद कर दिया है; देश के लोगों की आजीविका का ख्याल करना छोड़ दिया है; भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण के संरक्षण का विचार छोड़ दिया है; यहां तक कि उसने इस बारे में भी सोचना छोड़ दिया है कि कैसे आम लोगों को जरूरी सुविधाएं, मसलन भोजन, पानी, स्वास्थ्य और शिक्षा, उचित दरों पर मुहैया कराई जाएं ताकि वे इंसान का जीवन जी सकें और अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं को पूर्ण रूप से विकसित कर सकें। उसे अब केवल यही चिंता है कि किस तरह विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनके भारतीय साझेदारों को निवेश के नये-नये अवसर उपलब्ध कराए जाएं ताकि वे भरपूर मुनाफा कमा सकें।

रिटेल में एफडीआई: वैश्वीकरण का अगला कदम

दो दशकों से हो रहे वैश्वीकरण ने भारतीय अर्थव्यवस्था को भारत के विदेशी कर्जदाताओं पर और अधिक निर्भर बना दिया है। वैश्वीकरण की शर्तों से देश का विदेशी मुद्रा संकट और गहरा हो गया है। आयात उदारीकरण से भारत का व्यापार घाटा आसमान छूने लगा है: 1991-92 में 2.8 अरब डालर से बढ़कर वह 2011-12 में 189.7 अरब डालर हो गया—आश्चर्यकारक 60 गुना ज्यादा! परिणामस्वरूप देश का चालू खाते का घाटा (देश के विदेशी कार्य-व्यापार में आय और व्यय में अंतर) 2011-12 में 78.2 अरब डालर पहुँच गया, जो कि एक रिकार्ड है; और विदेशी कर्ज मार्च 2012 के अंत में गगनभेदी 346 अरब डालर हो गया—जो कि 1991-92 की तुलना में 4 गुना ज्यादा है।[84]

विदेशी कर्ज के भंवर में फंसने के चलते भारतीय अर्थव्यवस्था विदेशी मुद्रा दिवालियेपन से बचने के लिये और ज्यादा विदेशी पूंजी के अन्तर्प्रवाह (एफडीआई) पर निर्भर हो गई है। और इसलिये विदेशी कॉरपोरेट सेनाएं और उनकी दलाल सरकारें हमारे देश के सम्मान और प्रतिष्ठा को निर्लज्जता के साथ रौंद रही हैं, आर्थिक सुधारों को और तेजी से लागू करने के लिये बांहें मरोड़ रही हैं, देश की अर्थव्यवस्था के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को विदेशी कंपनियों की लूट के लिए खोलने के लिये मजबूर कर रही हैं। देश को आजाद हुए मात्र आधा शतक बीता है और शोक-संगीत सुनायी देने लगा है!

खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश को इजाजत देना और कुछ नहीं, वैश्वीकरण की उन्हीं नीतियों पर अमल जारी रखना है, जो भारतीय शासक वर्ग पिछले दो दशकों से लागू करते जा रहे हैं। वॉलमार्ट, टेस्को, कैरेफोर और मेट्रो जैसी विदेशी खुदरा कम्पनियों के मातृ देशों में बाजार चिरस्थायी मंदी से ग्रस्त हैं, यानि वहां निवेश की बहुत संभावनाएं नहीं रह गई हैं। इसलिए वे पूंजीनिवेश करने के नये-नये अवसर खोज रही हैं। इसके अलावा, इनके अपने देशों में इनके कार्यकलापों से स्थानीय समुदायों की जो बदहाली हुई है, उसके चलते इन्हें अपने देशों की जनता के विरोध का सामना करना पड़ रहा है। इसलिये वे भारत में अपने व्यवसाय के विस्तार के लिए उत्सुक हैं और उन्होंने भारत सरकार पर दबाव डालना शुरू किया कि वह खुदरा क्षेत्र को विदेशी पूंजीनिवेश के लिये खोले।

भारत के अभिजात तबके वैश्वीकरण को लेकर अतिउत्साहित हैं। देश के पूंजीपति वर्ग की अब अर्थव्यवस्था के दूरगामी विकास में कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी है। उसकी अब सिर्फ विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कनिष्ठ साझेदार बनकर अपना मुनाफा बढ़ाने में रुचि रह गयी है। देश के आडम्बरी उच्च वर्ग देश में विदेशी कंपनियों के आने पर हर्षोन्मत्त हैं, क्योंकि अब दुनियाभर की सबसे आधुनिक

उपभोक्ता वस्तुएं देश में उपलब्ध हैं। और इसलिये, अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिये, भारत के अमीर तबकों ने भी खुदरा क्षेत्र को एफडीआई के लिये खोलने का समर्थन किया। उनके खुशामदी टट्टू, भारत के देशद्रोही बुद्धिजीवियों, ने एक आक्रामक प्रचार अभियान शुरू कर दिया—कि खुदरा क्षेत्र में एफडीआई के आने से भारतीय अर्थव्यवस्था को लाभ पहुंचेगा, लोगों को कम दाम पर चीजें मिलेंगी, किसानों की आय बढ़ेगी, और पता नहीं क्या-क्या हो जायेगा!

देश की प्रमुख राजनीतिक पार्टियां भारतीय अमीरों के हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं। देश के कुलीन तबके तो रिटेल में एफडीआई का समर्थन कर ही रहे थे; बढ़ता विदेशी दबाव और गहराते विदेशी मुद्रा के संकट के आगे समर्पण कर अन्ततः भारत सरकार ने देश की जनता के प्रबल विरोध को नजरअंदाज कर खुदरा क्षेत्र में एफडीआई को इजाजत दे दी।

हमें अपने संघर्ष की धार तेज करनी चाहिए

दोस्तों, हमारे देशव्यापी संघर्ष के बावजूद भारतीय शासक वर्ग ने अपनी घृणित जनविरोधी, देशबिकाऊ, वैश्वीकरण की नीतियों को आगे बढ़ाते हुए खुदरा क्षेत्र में विदेशी पूंजीनिवेश को अनुमति दे दी है।

स्पष्ट है, हम कमजोर पड़ गये। हमें अपने आंदोलन को और व्यापक व तीव्र बनाना होगा। इसके लिये हमें बहुत सारे कदम उठाने होंगे।

हममें से बहुत सारे लोग निराशा का शिकार हैं। एक आम तर्क यह दिया जा रहा है कि यदि विपक्षी पार्टियां इस नीति को नहीं रोक पाई, तो हम सामान्य जन क्या कर सकते हैं? हमें इसके बारे में स्पष्ट होना होगा कि प्रमुख विपक्षी पार्टियों ने इस नीति का विरोध सिर्फ मौकापरस्ती के लिये किया था, इस नीति के खिलाफ व्यापक जनाक्रोश का फायदा उठाने के लिये किया था, सिद्धांतत: वे इस नीति से सहमत हैं। इसीलिए उन्होंने इस नीति के खिलाफ दृढ़तापूर्वक संघर्ष के लिये जनता को संगठित करने का कोई प्रयास नहीं किया, और सिर्फ अनुष्ठान के बतौर एक-दिवसीय भारत बंद का आह्वान किया।

ऐसा पहले भी हुआ है। पिछले दो दशकों के दौरान विभिन्न पार्टियों के तरह-तरह के गठबंधन केंद्र में सत्ता में रहे हैं। हर समय सत्तारूढ़ गठबंधन ने आर्थिक सुधारों को आगे बढाया है और हर बार विपक्षी पार्टियों ने इसका विरोध किया है। लेकिन अगले चुनाव में जब इसी विपक्ष ने सरकार बनाई है, तो उसने भी इन्हीं नीतियों को आगे बढ़ाया है। सच्चाई यह है कि वैश्वीकरण भारत के संपूर्ण धनिक तबके की और उसकी पार्टियों की आम सहमति की नीति है।

इसके बारे में कत्तई निराश होने की जरूरत नहीं कि आज हमारे पास

इमानदार, कर्मठ, जनता के प्रति समर्पित नेता नहीं हैं। नेता आसमान से नहीं पैदा होते, उनका जन्म जनआन्दोलनों के बीच से होता है। सबसे उँचे और मजबूत वृक्ष अन्ततः नन्हे से बीज से ही पैदा होते हैं।

हमें अपने संघर्ष को और व्यापक बनाना होगा, इसके लिये आंदोलन में और अधिक संख्या में लोगों को शामिल करना होगा। बहुत सारे लोग सरकार और मीडिया के कुप्रचार के झांसे में आ गये हैं और मानते हैं कि खुदरा क्षेत्र में एफडीआई की नीति से वास्तव में भारतीय किसानों और उपभोक्ताओं को फायदा होगा। जो हमसे सहमत भी हैं, उनमें भी अधिकतर हमारे साथ गली–मोहल्लों में आकर विरोध प्रदर्शित करने में झिझकते हैं। इसीलिये यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इस नीति के विनाशकारी परिणामों के बारे में लोगों को जागरूक करने का हम अपना अभियान जारी रखें।

निःसंदेह, लोगों को केवल जागरूक करना ही काफी नहीं है। हमें रचनात्मक विरोध के नए तरीकों को भी खोजना होगा और इसमें ज्यादा से ज्यादा जन-भागीदारी बढ़ाने की कोशिश करनी होगी।

गहराई से विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट है कि अन्ततः हमारा संघर्ष वैश्वीकरण के विरोध में उठ रहे देशव्यापी आंदोलन का हिस्सा है। हमारे देश का शासक वर्ग नफाखोरी के अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिये देश को ही विशालकाय लुटेरी विदेशी कंपनियों को बेच रहा है। हमारा संघर्ष इस घिनौने षडयंत्र के खिलाफ है, एक प्रकार से यह दूसरे आजादी के आंदोलन की शुरूआत है। जैसे-जैसे इसमें लोगों की भागीदारी बढ़ेगी, वैसे-वैसे हमारा आंदोलन संपूर्ण समाज के रूपांतरण के लिये एक मजबूत शक्ति बन जाएगा। तब यह एक नये भारत का निर्माण करेगा, जहां विकास का अर्थ कॉरपोरेट घरानों का मुनाफा बढ़ाना नहीं होगा, बल्कि सम्पूर्ण आम जनता की बुनियादी जरूरतों—स्वस्थ रखने वाला खानपान, स्फूर्तिदायक शिक्षा, सस्ती और योग्य आरोग्य व्यवस्था, अच्छा घर, वृद्धावस्था में सुरक्षा और प्रदूषण मुक्त साफ-सुथरा पर्यावरण—को मुहैया करना होगा।

दोस्तों, यह सब मात्र एक स्वप्न नहीं है। हम सब आम लोगों की सामूहिक ताकत बहुत ज्यादा है; यदि हम इकट्ठा हो जायें, तो धरती पर स्वर्ग रच सकते हैं। निश्चित ही इस स्वप्न को साकार करना एक लंबा और भीषण संघर्ष है लेकिन इसे जीता जा सकता है। लेकिन आज हम इस कदर बिखर चुके हैं कि हमने अपनी संगठित ताकत पर भरोसा खो दिया है।

हर अंत को एक शुरूआत की जरूरत होती है, और जब शुरूआत होगी तभी अंत भी होगा। इसलिए हम सभी को छोटी-छोटी पहल लेने की जरूरत है। आइए! हम सब मिलकर हमारे नगर और उसके आस-पास के छोटे व्यवसायियों, किसानों और उपभोक्ताओं को संगठित करने की कोशिश कर एक नई शुरूआत करें...

संदर्भ और टिप्पणी

1 Rajinder Puri, "Did Walmart bribe Indian politicians?", *The Statesman*, Dec 12, 2012, http://www.asianewsnet.net; Venky Vembu, "From Enron to Wal-Mart: the dirty business of 'lobbying'", Dec 11, 2012, http://www.firstpost.com

2 Deepal Jayasekera, "Indian government puts retail sector restructure on hold", Dec 8, 2011, http://www.wsws.org

3 "Retail FDI on hold, India Inc unhappy", Dec 6, 2011, http://info.shine.com

4 "Microsoft 'disappointed' with hold back on retail FDI", Dec 9, 2011, http://businesstoday.intoday.in

5 Mayur Shetty, "Standard & Poor's warns India of a downgrade to junk category", *TNN*, Jun 11, 2012, http://timesofindia.indiatimes.com; Amol Sharma, Sudeep Jain, "India Gets Downgrade Warning", April 25, 2012, http://online.wsj.com

6 "Fitch downgrades India's credit rating from stable to negative", June 19, 2012, http://indiatoday.intoday.in; "PM concerned over Moody's forcast on economy", *PTI*, Aug 11, 2012, http://www.hindustantimes.com

7 "Time magazine dubs Manmohan Singh as 'underachiever'", *PTI*, Jul 8, 2012, http://articles.timesofindia.indiatimes.com

8 "After Time, Washington Post calls PM Manmohan Singh a "tragic figure"", Sept 5, 2012, http://indiatoday.intoday.in

9 "In India's interest to improve business climate to attract more FDI: US official", *PTI*, Feb 20, 2012, http://articles.economictimes.indiatimes.com; "UK wants India to open retail, raise FDI limit in defence", *PTI*, Jan 14, 2011, http://articles.economictimes.indiatimes.com; "India to go ahead with FDI in multi-brand retail: Minister", July 27, 2012, http://www.fibre2fashion.com

10 "Investment climate in India deteriorating, time to make difficult reforms: Barack Obama", *PTI*, July 15, 2012, http://www.ndtv.com

11 "Youth Congress meet: PM and Sonia vow to bring Lokpal, defend FDI", *India Today*, November 29, 2011, http://indiatoday.intoday.in

12 "FDI in multi-brand retail will create 10 million jobs: Anand Sharma", *The Times of India*, Nov 26, 2011, http://timesofindia.indiatimes.com

13 "High net worth individuals in India up 51% in 2009", *Financial Express*, Jun 24, 2010, http://www.financialexpress.com

14 Amit Sengupta, "So, where have all the poor gone?", *Hardnews*, Jan 2010, http://www.hardnewsmedia.com; Utsa Patnaik, "Trends in Urban Poverty under Economic Reforms: 1993-94 to 2004-05", http://www.indiaenvironmentportal.org.in

15 Neeraj Jain, *India Becoming a Colony Again*, pp. 54-57, Lokayat publication, Pune, available online at www.lokayat.org.in

16 1 अरब = 100 करोड़

17 The figure of $400 billion is cited in numerous newsreports. See for example: "FDI in India: Just 4 percent of India's retail is organised," *The Times of India*, Nov 30, 2011, http://timesofindia.indiatimes.com; "FDI in retail: Only 4 percent is organised, says CII", *Business Today*, Nov 30, 2011, http://businesstoday.intoday.in. This is probably based on the Business Monitor International (a renowned multinational credit risk and political risk rating agency) *India Retail Report* for the second-quarter of 2011, which says that total retail sales in India was $395.96 billion in 2011. The 2011 edition of *Global Retail Development Index* (GRDI) published by AT Kearney, the well-known international management consultancy firm, puts the size of India's retail market at $435 billion, while the international financial conglomerate Citigroup in its *India*

Microscope report estimates its size at $470 billion.

18 Most newsreports and articles cite this figure. This probably comes from the National Sample Survey Organisation's survey of employment and unemployment in 2009-10, according to which the service sector category that includes the wholesale and retail trade (besides the much smaller segment of repair works for automobiles and personal and household goods) provided jobs for 44 million people in the total workforce of 459 million. (C. P. Chandrasekhar, “Retreat on retail”, *Frontline*, Dec. 17-30, 2011, http://www.frontlineonnet.com)

19 Neeraj Jain, *India Becoming a Colony Again*, pp. 54-57, op. cit.

20 *India in Business: Industry & Services*, Ministry of External Affairs, Govt of India, http://www.indiainbusiness.nic.in

21 Mathew Joseph, et. al., *Impact of Organized Retailing on the Unorganized Sector*, Indian Council for Research on International Economic Relations, May 2008, p. vi, http://dipp.nic.in

22 Global Retail Development Index—यह खुदरा बाजार के विकास में ऊपर के 30 उभरते देशों की सूची है, जिसके आधार पर दुनिया के खुदरा व्यापारी अपनी निवेश नीतियां तय कर सकते हैं।

23 *GRDI 2011*, AT Kearney, http://www.slideshare.net

24 Mathew Joseph, et. al., *Impact of Organized Retailing on the Unorganized Sector*, op. cit.; “120 million square feet mall space by Q1, 2011: Malls of India report”, Sep 16, 2009, http://www.indiaretailing.com; “India Organised Retail Market 2010”, Knight Frank India, http://online.wsj.com

25 “Multinational Corporations: A Key to Global Poverty Reduction”, Jan 9, 2006, http://www.globalenvision.org

26 J. B. Foster, et. al.,“Monopoly and Competition in Twnty-First Century Capitalism”, *Monthly Review*, April 2011, http://monthlyreview.org

27 J. B. Foster, et. al., “The Internationalization of Monopoly Capital”, *Monthly Review*, June 2011, http://monthlyreview.org

28 *Oligopoly, Inc. 2005*, Communique, ETC Group, Nov-Dec 2005, http://www.etcgroup.org

29 J. B. Foster, et. al., “The Internationalization of Monopoly Capital”, op. cit.

30 J. B. Foster, et. al.,“Monopoly and Competition in Twenty-First Century Capitalism”, op. cit.

31 Swiss Federal Institute of Technology

32 Operating or day-to-day revenues

33 Andy Coghlan and Debora MacKenzie, “Revealed — the capitalist network that runs the world”, *New Scientist*, Oct 24, 2011, http://www.newscientist.com

34 For more on this theory, see Reference nos. 24 and 25.

35 For more on this theory, see: Paul Baran and Paul Sweezy, *Monopoly Capital*, K. P. Bagchi and Company, Calcutta 1994

36“Global Retailing - International retail factsheet”, IGD, Jun 3, 2010, http://www.igd.com

37 Peter S. Goodman and Philip P. Pan, “Chinese Workers Pay for Walmart's Low Prices”, Feb 8, 2004, http://www.washingtonpost.com

38 APMC – कृषि उत्पादन बाजार समिति – भारत की राज्य सरकारों द्वारा स्थापित एक मार्केटिंग बोर्ड जो किसानों को अपना उत्पाद व्यापारियों या उनके प्रतिनिधियों को सही दामों पर बेचने में मदद करता है।

39 J. B. Foster, et. al., “Monopoly and Competition in Twenty-First Century Capitalism”, op. cit.

40 Vijay Prashad, “Shop and awe”, *Frontline*, Dec. 17-30, 2011, http://www.frontlineonnet.com

41 Kenneth E. Stone, “Impact of the Walmart Phenomenon on Rural Communities”, Published in Proceedings: *Increasing Understanding of Public Problems and Policies—

1997, Farm Foundation, Chicago, USA, http://www2.econ.iastate.edu

42 There are several articles and reports on this on the internet. See for example: “Shameless: How Walmart Bullies Its Way Into Communities Across America”, *Walmart Watch Report*, 2005, http://www.maine.com; “Walmart's expansion fight now rests with Gov. Brown”, *Los Angeles Times*, Sept 3, 2011, http://articles.latimes.com; “Walmart fight heats up in California”, *Christian Science Monitor*, June 19, 2007, http://www.csmonitor.com; Robert Smith, “New York City Officials To Walmart: Keep Out”, *NPR*, Feb 4, 2011, http://www.npr.org

43 “Supermarkets fed up with Sunday shopping rules”, *Dutch News*, July 5, 2011, http://www.dutchnews.nl; Mark Faithfull, “Europe still divided by Sunday Shopping Conundrum”, April 2006, http://www.icsc.org

44 Horst Raff and Nicolas Schmitt, “Imports and the structure of retail markets”, June 2011, p. 2, http://econstor.eu; “Liberalisation set to revolutionise French retailing”, *Data Monitor*, April 9, 2008, http://about.datamonitor.com; Ken Baar, “Legislative Tools for Preserving Town Centres and Halting the Spread of Hypermarkets and Malls Outside of Cities”, Institute for Transport and Development Policy, New York, USA, www.itdp.org

45 *The grocery market*, Office of Fair Trading, May 2006, http://www.oft.gov.uk; Shekhar Swamy, "How the world burnt its fingers", *The Hindu Business Line*, Aug 25, 2011, http://www.thehindubusinessline.com

46 “Tesco Plc: Overview”, Sept 2004, http://www.corporatewatch.org

47 Leonardo Iacovone, et. al., “Walmart in Mexico: The Impact of FDI on Innovation and Industry Productivity”, Jan 2009, http://spot.colorado.edu

48 “A Case Analysis of the Wal-Mart De Mexico”, http://www.otherpapers.com; Di Gregorio, et. al., “Competition between Emerging Market and Multinational Firms: Wal-Mart and Mexican Retailers”, http://www.allbusiness.com

49 Nivedita Menon, “Indian Government’s Claims About Corporate Retail and the Reality: Shankar Gopalakrishnan”, *Kafila*, November 30, 2011, http://kafila.org/2011

50 C. P. Chandrasekhar, “Experience so far”, *Frontline*, Dec. 17-30, 2011, http://www.frontlineonnet.com

51 “Indonesia will have zoning to restrict big retail chains”, *India Retailing*, Dec 28, 2007, http://www.indiaretailing.com; Mohan Guruswamy, Kamal Sharma, *FDI in Retail—II: Inviting more Trouble?* Centre for Policy Alternatives, New Delhi, Feb 2006, http://cpasindia.org

52 T. K. Rajalakshmi, “Sustained resistance”, *Frontline*, Dec. 17-30, 2011, http://www.frontlineonnet.com

53 Henry Blodget, “Walmart Employs 1% of America. Should It Be Forced To Pay Its Employees More?” *Business Insider*, Sept 20, 2010, http://articles.businessinsider.com

54 Dave Jamieson, “Walmart Minimum Wage Of $12 Wouldn't Drive Up Prices, Says Study”, *Huff Post*, April 19, 2011, http://www.huffingtonpost.com; Rachel Johnson, “California Walmart Workers Win Settlement Over Wage Violations”, May 13, 2010, http://www.californiaprogressreport.com

55 Stephen Lendman, “Global Sweatshop Wage Slavery”, Feb 25, 2010, http://www.thepeoplesvoice.org

56 Jonathan Turley, “Walmart CEO Makes Average Workers Annual Salary Every Hour”, July 3, 2010, http://jonathanturley.org

57 P. Sainath, “FDI in retail—UPA ‘retired hurt’”, *The Hindu*, Dec 12, 2011, http://www.thehindu.com

58 “OECD Countries Raised Farm Subsidies in 2009”, July 19, 2010, http://globalfoodforthought.typepad.com

59 Shekhar Swamy, “How FDI in retail will hurt farmers”, *The Hindu Business Line*, Dec

25, 2011, http://www.thehindubusinessline.com
60 *Power Hungry: Six reasons to regulate global food corporations*, Actionaid International, Jan 2005, www.actionaid.org.uk
61 Jayati Ghosh, "Multinational Retail Firms in India", *Macroscan*, Dec 12, 2011, http://www.macroscan.org
62 Mohan Guruswamy, Kamal Sharma, *FDI in Retail—II: Inviting more Trouble?* op. cit.
63 *Power Hungry: Six reasons to regulate global food corporations*, op. cit.
64 *Aspects of India's Economy*, No. 43, Research Unit for Political Economy, July 2007, http://rupe-india.org
65 *Power Hungry: Six reasons to regulate global food corporations*, op. cit.
66 Ibid.
67 Nivedita Menon, "Indian Government's Claims About Corporate Retail and the Reality: Shankar Gopalakrishnan", op. cit.
68 Shekhar Swamy, "How FDI in retail will hurt farmers", op. cit.
69 *Aspects of India's Economy*, No. 43, op. cit.
70 *Power Hungry: Six reasons to regulate global food corporations*", op. cit.
71 "States to adopt news laws for contract farming", *Economic Times*, August 31, 2005, taken from IBEF, http://www.ibef.org; on how Centre and World Bank are armtwisting unwilling state governments, see: Gautam Dheer, "Deadline draws near Punjab still to amend APMC Act", *Express India*, Mar 03, 2008, http://www.expressindia.com
72 For more discussion on this, see: Neeraj Jain, *India Becoming a Colony Again*, pp. 33-38, op. cit.; Neeraj Jain, *Globalisation or Recolonisation*, Lokayat publication, Pune; available online at www.lokayat.org.in
73 P. Sainath, "FDI in retail—UPA 'retired hurt'", op. cit.
74"Wal-Mart's Impact on India's Suppliers—No FDI in India", http://www.indiafdiwatch.org; "Criticism of Walmart", *Wikipedia*, sourced on Jan 28, 2012, http://en.wikipedia.org
75 *Power Hungry: Six reasons to regulate global food corporations*, op. cit.
76 "Boycott Walmart", http://www.1worldcommunication.org
77 *Aspects of India's Economy*, No. 43, op. cit.
78 There are numerous articles on working conditions in Walmart's China suppliers available on the internet. See for example: David Barboza, "In Chinese Factories, Lost Fingers and Low Pay", Jan 5, 2008, http://www.nytimes.com; Peter S. Goodman and Philip P. Pan, "Chinese Workers Pay for Wal-Mart's Low Prices", op. cit.
79 Nivedita Menon, "Indian Government's Claims About Corporate Retail and the Reality: Shankar Gopalakrishnan", op. cit.
80 C. P. Chandrasekhar, "Experience so far", op. cit.
81 *Power Hungry: Six reasons to regulate global food corporations*, op. cit.
82 Nivedita Menon, "Indian Government's Claims About Corporate Retail and the Reality: Shankar Gopalakrishnan", op. cit.
83 *Power Hungry: Six reasons to regulate global food corporations*, op. cit.
84 "Balance of Payments: Current account deficit surges to 4.2% of GDP in FY2012", June 30, 2012, http://www.derivatives.capitaline.com; "India's current account deficit widens", PTI, Jun 29, 2012, http://timesofindia.indiatimes.com; "Mecklai graph: India's external debt at USD 345 bn, up 13%", Sep 11, 2012, http://www.moneycontrol.com

हमारे बारे में

कौन आज़ाद हुआ ?
किसके माथे से गुलामी की सियाही छूटी ?
मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी का...
मादरे-हिंद के चेहरे पे उदासी है वही...
कौन आज़ाद हुआ ?



अली सरदार ज़ाफरी ने ये पंक्तियां आज़ादी मिलने के कुछ वर्षों बाद लिखी थीं। लेकिन ये पंक्तियां हमारी देश की वर्तमान स्थिति का और भी सटीकता से वर्णन करती हैं। कौन आज़ाद हुआ, यह आज वाकई सवाल है ...

वैश्वीकरण के 'भ्रामक' नाम पर दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देश में आमंत्रित किया जा रहा है। देश को आज सिर्फ और सिर्फ बड़ी विदेशी और देशी निगमों की नग्न नफाखोरी के लिये चलाया जा रहा है। विशालकाय कॉरपोरेट घराने पुलिस-न्यायालय-नौकरशाही-नेताओं की मिलीभगत से गरीबों पर निर्मम हमला बोल रहे हैं। लाखों लोगों को उनकी जमीन-जंगल-पानी-संसाधनों से बेदखल किया जा रहा है—विशेष आर्थिक क्षेत्र प्रकल्प, विशाल आधारभूत प्रकल्प, गोल्फ मैदान, विलासी गृह प्रकल्प, इत्यादि बनाने के लिये। भारतीय कृषि को जानबूझकर उद्ध्वस्त किया जा रहा है—ताकि उसपर महाकाय विदेशी कृषि-व्यावसायिक निगमें अपना कब्ज़ा जमा सकें। परिणामस्वरूप, पिछले एक दशक में दो लाख से ज्यादा किसान आत्महत्या कर चुके हैं। लघु उद्योगों को दी जाने वाली सहूलियतें समाप्त की जा रही हैं—परिणामतः लाखों की तादाद में ये उद्योग बंद पड़ रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को कौड़ियों के मोल इन डाकुओं के हवाले किया जा रहा है। यहां तक कि अत्यावश्यक सेवाओं—शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, यातायात से लेकर राशन व्यवस्था तक, और तो और पेयजल व्यवस्था भी—का निजीकरण किया जा रहा है, ताकि पूंजीपति घराने इनको अपनी मुनाफाखोरी का साधन बना सकें। आज नौकरियां ही नहीं हैं, शायद लगभग आधी आबादी बेरोजगार या अर्ध-बेरोजगार है। हम क्या खायें-पियें-देखें-सोचें-पहनें, इसपर भी साम्राज्यवादी लुटेरे अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते हैं, और इसीलिये उनकी पूंजी के साथ उनकी संस्कृति भी हमारे देश में आ रही है। अब हमारे देश पर साम्राज्यवादियों को प्रत्यक्ष शासन करने की जरूरत नहीं; देश की आर्थिक नब्ज़ पर नियंत्रण स्थापित कर, वे हमें मनमर्जी से लूट रहे हैं।

जैसे-जैसे आर्थिक व्यवस्था बीमार होती जा रही है, सामाजिक और राजकीय व्यवस्था भी पतित होती जा रही है। सर्वव्यापी भ्रष्टाचार, जाति-आधारित समाज व्यवस्था जिसके चलते दलितों पर रोज ही अत्याचार हो रहे हैं,

सांप्रदायिक राजनीतिक व्यवस्था जो कि लोगों को धर्म के नाम पर बांटकर उनमें एक-दूसरे के प्रति नफरत भर रही है, सड़ी-गली मूल्य व्यवस्था जो तुच्छ स्वार्थों को बढ़ावा दे रही है—यही आज की सच्चाई है।

आम लोग बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके भारतीय दलालों के इस घिनौने नाटक को मूकदर्शी बने नहीं देख रहे हैं। देश भर में, जैसे वसंत ऋतु आने पर हर तरफ फूल खिलने लगते हैं, लोग छोटे-छोटे संगठन बना रहे हैं और अपनी आवाज़ बुलंद कर रहे हैं। हालांकि ये संघर्ष अभी छोटे हैं, बिखरे हुए हैं, देश का भविष्य इन्हीं शानदार संघर्षों में है। जैसे-जैसे इन संघर्षों में अधिक संख्या में लोग शामिल होंगे, ये मजबूत होंगे, इकट्ठा होंगे और समाज के रूपांतरण के लिये शक्तिशाली ताकत बन जायेंगे।

हां, 'दूसरा जग संभव है'। लेकिन इसको यथार्थ में लाने के लिये हमें अपने छोटे-छोटे प्रयास शुरू करने होंगे। इसलिये हमने इस मंच की स्थापना की है—लोकायत। हम शासक वर्गों की देशद्रोही, जनविरोधी नीतियों के बारे में जनजागृति के लिये अभियान-सेमिनार-धरने-रैलियां आयोजित करते हैं, लोगों में परिवर्तन की उम्मीद जगाने के लिये विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करते हैं, जातीय शोषण-सांप्रदायिकता-महिलाओं के शोषण जैसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक विषयों पर लोगों को जागृत और संगठित करने का प्रयास करते हैं, और जरूरी विषयों पर पुस्तिकायें-पत्रक प्रकाशित करते हैं।

दोस्तों, हम साधारण लोग हैं, आप ही की तरह। आप भले ही हमें नहीं जानते हों, लेकिन फिर भी, हमें विश्वास है कि आप हमारे उपरोक्त विचारों से सहमत होंगे। लेकिन सिर्फ आपकी सहमति काफी नहीं, हमारे विभिन्न कार्यक्रमों में आपकी सक्रिय भागीदारी बहुत आवश्यक है। आप हमसे निम्न पतों पर संपर्क कर सकते हैं:

संपर्क पता

लोकायत, सिंडिकेट बैंक के सामने, लॉ कॉलेज रोड,
नल स्टॉप के पास, पुणे - 411004

(*हर रविवार शाम 4 से 7 बजे यहां मीटिंग होती है। मीटिंग में आपका स्वागत है।*)

संपर्क फोन

नीरज जैन	94222 20311
ऋषिकेश येवलेकर	94235 07864

Website	http://lokayat.org.in
Email	lokayat.india@gmail.com
Mailing List	pune.lokayat@lists.riseup.net